एकांकीकार डा० रामकुमार वर्मा

(उस्मानिया विश्वविद्यालय एम.ए(अन्तिम)
परीक्षा के लिए प्रस्तुत-प्रबन्ध)

Roll No. 582.

निर्देशक: श्री डा० रामनिरंजन पांडेय
(अध्यक्ष, हिन्दी विभाग)

विषय - सूची

		पृष्ठ
१.	निवेदन	१ - ४
२.	पहला परिच्छेद	१ - ३३
३.	दूसरा परिच्छेद	३४ - ५८
४.	तीसरा परिच्छेद	५९ - १२८
५.	चौथा परिच्छेद	१२९ - १५३
६.	पांचवा परिच्छेद	१५४ - १६३
७.	छटवा परिच्छेद	१६४ -- १७६
८.	परिशिष्ठ	
	डा. रामकुमार वर्मा से रू-ब-रू भेंट	
९.	सहायक ग्रन्थों की सूची	

R. Pandey
9/3/64
Head, Hindi Deptt.,
C.U.

---o---

एकांकी की किशोर अवस्था में इन दोनों साहित्यों के सम्मिश्रित रूप के दर्शन होते हैं। ~~जय शंकर के सम्मिश्रत् रूप के दर्शन होते हैं~~। जयशंकर प्रसाद का " एक घूँट " इस के लिए उदाहरण है। इस के पश्चात् अपनी पूर्ण विकसित अवस्था में आधुनिक पाश्चात्य एकांकी की तरह हिन्दी एकांकी ने अपने रूप को संवारा है। इस प्रबंध के पहले परिच्छेद में इस मत की पुष्टि की गई है और यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि हिन्दी एकांकी का क्रमगत विकास संस्कृत तथा अंग्रेजी नाट्य साहित्यों की प्रेरणाओं के बल पर कैसे हुआ है। प्रथम परिछेद का संबंध अंतिम परिच्छेद से जुड़ा हुआ है। क्यों कि एकांकी के उपर्युक्त विकास में डा. वर्मा के योगदान का स्पष्टीकरण अंतिम २ परिच्छेद में पूर्ण रूप से स्पष्ट किया गया है।

दूसरे परिच्छेद में एकांकी शिल्प पर विचार किया गया है। एकांकी के सभी तत्वों पर प्रकाश इस उद्देश्य से डाला गया है कि आगे के परिच्छेदों में डा. वर्मा के एकांकियों के मूल्यांकन में सहायता मिले। इस परिच्छेद में भी एकांकी के तत्वों की विवेचना करते समय डा. वर्मा के एकांकियों में से यथा योग्य उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। इसी परिच्छेद में एकांकियों के वर्गीकरण के विषय में विद्वानों के मत को प्रस्तुत करते हुए मैं ने अपनी दृष्टि के अनुसार वर्गीकरण का विधान स्थापित किया है। मेरी दृष्टि से शिल्प-संबंधी वर्गीकरण स्थिरत्व को प्राप्त नहीं कर पाता क्यों कि प्रत्येक युग में लेखक शिल्प-संबंधी अपने मौलिक नये प्रयोग करते रहते हैं। इस कारण से एकांकी के प्रकारों की संख्या बढ़ती ही जाती है। अत : मैं ने विषय वस्तु के दृष्टिकोण से वर्गीकरण करना उचित समझा है। विषय वस्तु भी विविध प्रकार की हो सकती है। लेकिन उस का विभाजन मोटे तौर पर दो भागों में किया जा सकता है। सामाजिक और ऐतिहासिक। इन दो विभागों में से प्रथम विभाग के अंतर्गत वर्तमान काल के मनुष्य जीवन से संबंधित सभी विषय समाविष्ट हो जाते हैं। धर्म, राजनीति, दर्शन, परिवार व्यक्ति आदि से संबंधित सब समस्याएं समाज के धरातल पर ही उत्पन्न होती है। ऐतिहासिक रचनाओं के भीतर समस्त मानवीय संवेदनाएँ चित्रित की जाती हैं। इसी कारण से मैंने को सामाजिक समझा है। मैं ने एकांकियों का वर्गीकरण उपर्युक्त दो वर्गीकरण, एक अन्य दृष्टिकोण से भी किया है। उस वर्गीकरण का आधार एकांकियों के प्रस्तुतीकरण के साधन हैं। एकांकियों के प्रस्तुतीकरण के दो साधन हैं --- एक रंगमंच दूसरा रेडियो। इस दृष्टिकोण से एकांकियों के दो वर्ग होते हैं। १. रंगमंचीय एकांकी २. रेडियो एकांकी. इन दोनों में कलागत भिन्नता भी है।

तीसरा परिच्छेद प्रबंध के अन्य परिच्छेदों से अपेक्षाकृत बड़ा है। क्यों कि इसी में डा. वर्मा के एकांकी शिल्प के क्रमगत विकास का स्पष्टीकरण किया गया है। इस में डा. वर्मा की रचनाओं को रचना-तिथि के आधार पर दो भागों में विभाजित किया गया है। निर्माण कालीन एकांकी तथा विकासकालीन एकांकी। इन दोनों प्रकारों की रचनाओं की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। इस के पश्चात् दूसरे परिच्छेद में स्थापित वर्गीकरण के आधार पर डा. वर्मा के एकांकियों को दो भागों में (सामाजिक तथा ऐतिहासिक) विभाजित कर उन के निर्माण की विशिष्टताओं का विवेचन प्रस्तुत कर किया है। परिच्छेद के अंत में निष्कर्ष के रूप में एकांकी के सभी तत्वों को लेते हुए डा. वर्मा के एकांकियों की आलोचना की गई है। इस में न केवल शिल्प संबंधी विवेचना की गई है अपितु विषय संबंधी विवेचना भी प्रस्तुत की गई है। डा. वर्मा आदर्शवादी लेखक हैं। इसी कारण से इन की रचनाओं में नैतिक आदर्श की स्थापना की गई है। कहीं कहीं ऐसे आदर्श की स्थापना की गई है जो केवल आदर्श ही हो, यथार्थ या व्यवहार में न दिखलाई पड़ता हो। इस तरह के आदर्श को स्थापित करने में कहीं कहीं एकांकी का रूप विस्तृत हो गया है जो एकांकी विधा के विरुद्ध है। स्थान स्थान पर मैं ने इन का उल्लेख किया है।

एकांकी नाटक का प्रमुख तत्व आभनेयता है। चौथा परिच्छेद में इसी प्रमुख तत्व अभिनेयता तथा रंगमंच से संबंधित है। इस में हिन्दी के रंगमंच के विकास का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस के द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि डा. वर्मा के पूर्व हिन्दी रंगमंच की क्या स्थिति थी और उन्होंने रंगमंच के लिए अपनी रचनाओं के द्वारा क्या योग दान दिया है? इस में दूसरे प्रकार के वर्गीकरण के आधार पर डा. वर्मा के एकांकियों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अर्थात् रंगमंचीय एकांकियों और रेडियो एकांकियों का पृथक् पृथक् परिचय तथा विवेचन इस परिच्छेद में किया गया है।

किसी भी लेखक की महानता उन के जीवन के प्रति दृष्टिकोण से ही जानी जा सकती है। इसीलिए मैं ने पांचवे परिच्छेद में डा. वर्मा के जीवन दर्शन का स्पष्टीकरण किया है। उन के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए उन के एकांकियों में उस दर्शन की उपलब्धियों का परिचय दिया है।

अंतिम परिच्छेद में हिन्दी एकांकी साहित्य में डा. वर्मा के स्थान का मूल्यांकन किया गया है। डा. वर्मा आधुनिक एकांकी के पथ प्रदर्शक है।

उन के समकालीन प्रमुख एकांकी कारों की रचनाओं की शिल्पगत तथा विषय गत विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय देते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि डा. वर्मा का एकांकी -- साहित्य किस तरह अपना पृथक् महत्वपूर्ण स्थान रखता है ?

परिशिष्ट में " डा. वर्मा से मेरी भेंट " भी दी गई है । जिस से यह स्पष्ट होता है कि मेरे अध्ययन के लिए दिशाएं कैसे प्राप्त हुई है ।

खेद खेद की बात है कि डा. वर्मा के एकांकियों के चार संकलन रूप-रंग, रूपरास, बापू और पांचजन्य प्राप्त नहीं हुए हैं । उन संग्रहों के एकांकियों का विवेचन इस में सम्मिलित नहीं हो पाया । बाद में उन के विवेचन को परिशिष्ट के रूप में सम्मिलित करने का प्रयास करूंगी ।

अपने इस अध्ययन कार्य में मुझे जिन महानुभावों से सहायता प्राप्त हुई है, उन में से प्रथम स्थान हमारे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष, पूज्य गुरुवर्य, आचार्य श्री रामनिरंजन पांडे जी का है । मैं ने आप के तत्वावधान में रह कर इस कार्य को पूर्ण किया है । आप ने मेरे मार्ग का निर्देश ही नहीं किया अपितु सब प्रकार की सहायता प्रदान की है । आप के प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करती हूं । मैं ने पहले ही निवेदन किया है कि सौभाग्य से एकांकीकार श्री डा. रामकुमार वर्मा से मेरी भेंट हुई है और उन्होंने उन दिशाओं की ओर संकेत किया है जिन से मैं अपने अध्ययन कार्य को सफल कर सकूं । उन के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना पर्याप्त न-हीं [illegible] मैं उऋण हूं । हिन्दी विभाग के अन्य आचार्य गुरुवर्य श्री राजकिशोर पांडेय जी और श्री रामकुमार खण्डेलवाल जी के प्रति भी मैं हृदय से कृतज्ञता प्रकट करती हूं जिन्होंने आवश्यक सूचनाएं दी है ।

निवेदिका

सी० तुलसम्मा

तारीख .....

00000

पहला परिच्छेद

आधुनिक युग में जिन जिन नवीन साहित्यिक विधाओं का आरंभ और विकास हुआ है, उन उन के उद्भव के पीछे पश्चिमी साहित्यिक विधाओं तथा साहित्यकारों की प्रेरणा काम करती रही है । न केवल हिन्दी साहित्य में ही ऐसी बात हुई अपितु भारत भर के भाषा-साहित्यों का अवलोकन इस बात को प्रमाणित करता है कि नयी विधाओं का आरंभ आधुनिक युग में, अेक ही समय- अेक ही तरह की परिस्थितियों की प्रेरणा के बल पर हुआ है । यह कोई निन्दनीय बात नहीं कि साहित्य व कला का विकास अन्य देशीय प्रेरणाओं से हुआ हो । कला न केवल अेक देश की ही सम्पत्ति है न अेक ही देश की सीमाओं में वह बंध रहती । कला की व्यापकता की घोषणा करनेवाले तथाकथित आलोचक विद्वान पश्चिमी प्रेरणा को साफ इन्कार करते हैं । दूसरे वर्ग के अैसे लोग भी देश में विद्यमान हैं जो पश्चिम के पुजारी हैं और उनकी दृष्टि में हर अेक भाव धारा का दाता पश्चिम है । इस में कोई संदेह नहीं कि ये दोनों दृष्टिकोण "अति" की सीमा पर स्थित होकर वास्तविक सत्य को जानने में असमर्थ हुअे हैं ।

कहानी और उपन्यास की नवीन विधाओं के संबंध में जिस तरह वाद-विवाद उत्पन्न हुअे हैं उसी तरह अेकांकी की विधा के संबंध में भी चर्चाअें चलने लगीं । अपने अपने तर्कों के सहारे यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया कि यह भारतीय विधा ही है । यह पश्चिम की देन नहीं है । दूसरे वर्गवाले भी डंके की चोट पर यह कहने में न हिचके कि यह पश्चिम से आई है ।

वास्तव में यह न पश्चिम से आई है न पूर्णतः भारतीय विधा है । यही बात हम कहानी और उपन्यास की विधाओं के संबंध में भी कह सकते हैं । इस में अेक ओर जहाँ भारतीय उद्गम स्त्रोत का भी बल है वहाँ पश्चिमी शिल्प का भी हाथ है । दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि ये विधाअें जो अेक समय अन्य शिल्पगत विशेषताओं से युक्त विकसित हुई थीं और जिन का विकास देश की परिस्थितियों के कारण रुक गया था, नवीन रूप से आधुनिक शिल्प संबंधी विशेषताओं से भूषित होकर इस युग में पुनः अवतरित हुई हैं । यहाँ अेक बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है । अनुकरण, वह भी अंधानुकरण विकास की गति को रोकता है और बड़ा बुरा सिद्ध होता है ।

पर "प्रेरणा" अमूल्य है जो उन्नति की ऊँचाई पर ले जाती है । और वरदान-सिद्ध होती है । पश्चिमी साहित्य की प्रेरणा ने हमारे देश-भाषा-साहित्यों का बड़ा उपकार ही किया है । जहाँ प्रेरणा की जगह अनुकरण की प्रवृत्ति काम करने लगी थी वहाँ ह्रास की रेखाएँ भी स्फुट रूप से दिखाई पड़ती हैं । ~~प्रेरणा~~ कलाकार कभी अनुकरण नहीं करता । प्रेरणा ग्रहण करता है । ग्राह्य तथ्यों को स्वीकार कर अपने व्यक्तित्व के साँचे में ढालकर अेक अत्युत्तम कलाकृति को भेण्ट में देता है। प्रेरणा ग्राह्यता बुरी वस्तु नहीं है ।

हिन्दी अेकांकी के उद्गम के मूल में भी यही प्रेरणा की प्रवृत्ति काम करती रही है । इसी कारण से कितने ही भिन्न-भिन्न भ्रान्त विचारों के उठने पर भी प्रेरणा की प्रवृत्ति अपने काम में दृढ़ रही और अेकांकी के आज के विकास को देखते हुअे यह कोई भी स्वीकार करेगा कि यह नवीन विधा अपना पृथक अस्तित्व लिअे, अन्य विधाओं की भाँति महान है और उसका साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान है ।

हिन्दी अेकांकी के उद्गम के विषय में विद्वान आलोचकों में मत-भेद है । सर्वश्री प्रो. अमरनाथ गुप्त, डा. अेस.पी. खन्ना आदि आलोचकों के मतानुसार अेकांकी विधा पश्चिम से आई हुई नवीनतम वस्तु है । प्रो. अमरनाथ गुप्त ने अपनी पुस्तक "अेकांकी नाटक" में लिखा है कि "अेकांकी नाटक हिन्दी में सर्वथा नवीनतम कृति है । इसका जन्म हिन्दी साहित्य में अंग्रेजी के प्रभाव से कुछ ही वर्ष पूर्व हुआ है ।" डा. अेस.पी. खन्ना का कथन है // कि कुछ आलोचक अेकांकी का उद्गम संस्कृत साहित्य मानते हैं, परन्तु अेकांकी लेखन जब बीसवीं शताब्दी से प्रारंभ हुआ तो स्पष्ट है कि उस पर अंग्रेजी का प्रभाव है न कि संस्कृत का ।" डा. नगेन्द्र भी इस विधा को पश्चिम की देन मानते हैं । प्रो. सद्गुरु शरण अवस्थी, डा. सरनामसिंह शर्मा आदि आलोचक का मत इस से भिन्न है । उन के अनुसार अेकांकी नाटक का उद्गम संस्कृत नाट्य साहित्य है । प्रो. सद्गुरुशरण अवस्थी ने "नाटक और नायक" पुस्तक में लिखा है कि "यह न समझना चाहिअे कि भारतवर्ष में अेकांकी थे ही नहीं । डा. सरनामसिंह का कथन है कि -"यह मानना नितान्त भ्रामक होगा कि हिन्दी अेकांकी के सामने कोई भारतीय आदर्श ही न था । "/

// (1) डा. अेस.पी. खन्ना - "नाटक की परख" पृ 177

"/ (2) डा. सरनामसिंह शर्मा - "तपस्विनी" पृ. 1

वास्तव में इन दोनों मतों में आंशिक सत्यता है । यह सत्य है कि संस्कृत साहित्य में रूपक के भेद और उपभेदों की परंपराऐं मिलती हैं और रंगमंच तथा अभिनय का भी काफी विकास हुआ है । अेक अंकवाले नाटकों के विविध प्रकार भी मिलते हैं । लेकिन आधुनिक अेकांकी कला से संस्कृत अेकांकी कला पूर्णतः भिन्न है और आधुनिक अेकांकी नाट्य शिल्प में तथा पाश्चात्य अेकांकी नाट्य-शिल्प में कोई भेद नहीं है । यद्यपि मूल तत्व की दृष्टि से संस्कृत अेकांकी आधुनिक अेकांकी से भिन्न नहीं है किन्तु शिल्पगत साम्य दोनों में नहीं है । हिन्दी अेकांकी साहित्य संस्कृत तथा अंग्रेजी दोनों साहित्यों से प्रेरणा प्राप्त कर प्रयोग के पथ पर अग्रसर हुआ है । दोनों से प्रेरणा की बात इसीलिअे कही गई है कि हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सफल नेतृत्व में साहित्य की अनेक विधाओं का प्रयोग हुआ था । प्रयोग कालीन दशा में संस्कृत की परिपाटियों का पालन पूरा नहीं तो आधा ही सही देखा जाता है । इधर आधुनिक युग का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है । उस युग के नाटक नान्दी प्रस्तावना स्वगत व कथनों से भरे रहने पर भी विषय वस्तु के दृष्टिकोण से आधुनिक भाव धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं । हम देखते हैं कि भारतेन्दु युग क्या ही शिल्प, क्या विषय वस्तु दोनों दृष्टियों से निर्माण अथवा प्रयोग का युग था । साहित्य की विधाऐं अेक ओर संस्कृत साहित्य से प्रेरणा पाकर अपने विकास पथ की खोजने में व्यस्थ थीं तो दूसरी ओर पाश्चात्य साहित्य से भी प्रेरणा पाकर पथ-निर्णय करने में रत थीं । इसी कारण से पाश्चात्य तथा संस्कृत साहित्य दोनों से प्रभावित, दोनों के मिश्रित रूप का धारण कर तत्कालीन साहित्यिक विधाऐं पनपने लगीं । प्रयोग-काल के बीतते बीतते उन का पथ भी निर्णीत हो गया और वर्तमान कालीन आवश्यकताओं के अनुरूप शिल्प का विकास हुआ था । इस शिल्प विकास में अैसा लगता है कि पाश्चात्य साहित्यिक विधाओं के शिल्प का अधिक हाथ रहा है । किन्तु जिस तरह पाश्चात्य देशों में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा अन्य परिस्थितियों के अनुरूप युग की मांग के कारण नयी विधाओं का नये दृष्टिकोण से आविर्भाव और विकास हुआ उसी तरह भारत देश में भी सब क्षेत्रों की परिस्थितियों के अनुरूप, युग की माँग के ही कारण नयी विधाओं का प्रारंभ और विकास हुआ है ।

और अेक बात यहाँ स्पष्ट करने की है । पाश्चात्य देशों में जो क्रान्तियाँ हुई थीं और जिन के फलस्वरूप उन की विचार धाराअें और भावधाराअें निश्चित दिशाओं की ओर प्रवाहित होने लगी थी, अैसी क्रान्तियाँ हमारे देश में देर से हुई थीं । इस का कारण हमारा देश पराधीन था । पिछड़ा हुआ था । औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप मानव जीवन में जो जो परिवर्तन हुअे हैं, उन उन परिवर्तनों के दर्शन भी हमारे देश में देर से हुअे हैं । भारत के सभी भाषा साहित्यों का अवलोकन इस का साक्षी है । साहित्य में शैलीगत प्रक्रियाओं के परिवर्तन में भी विलंब दृष्टि गोचर होता है । अंग्रेजी साहित्य की "रोमान्टिसिज्म" की भाव-धारा हमारे देश - भाषा-साहित्यों में कब प्रवाहित हुई ? प्रसाद युग या छायावादी युग हाल ही का तो है । वैसे ही अन्य भाव धाराओं के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है । जैसे ऊपर कहा गया है, उपर्युक्त विलंब का कारण यह है कि तब तक हमारे देश में अैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न नहीं हुई जिन से वे भावधाराअें प्रवाहित हो सकें । हाँ, इतना तो अवश्य स्वीकार करना पड़ता है कि जब अैसी परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर, युग की मांग से उद्बोधित हो कर साहित्यकारों ने अपनी लेखनी हाथ में ली तब उस के सम्मुख पाश्चात्य भाव-धाराओं का प्रवाहित निश्चित मार्ग भी था जिस से उन को प्रेरणा मिली है । कोई भी सच्चा साहित्यकार, जो द्वितीय सृजन कर्ता के नाम से भूषित है, अपनी मौलिकता को तिलांजलि नहीं देता । अपने सृजन कार्य को प्रगतिशील बनाने केलिअे वह दूसरों से प्रेरणा अवश्य ग्रहण करता है । अतः साहित्य की नवीन विधाअें न तो केवल पाश्चात्य साहित्य की देन है न केवल संस्कृत साहित्य की परंपरा के विकसित रूप हैं । संस्कृत तथा अंग्रेजी दोनों साहित्यों के बल पर इन का विकास हुआ है । अेकांकी विधा का विकास भी इसी भाँति हुआ है । हिन्दी में अेकांकी की रचना का प्रारंभ संस्कृत अेकांकियों के तत्वों के आधार पर हुआ और साथ ही साथ पाश्चात्य प्रेरणा का हाथ भी रहा । प्रारंभ कालीन अवस्था की अपेक्षा विकास कालीन दशा में पाश्चात्य अेकांकी कला की प्रेरणा स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है ।

हम यहाँ क्रमशः संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी के अेकांकी साहित्य के इतिहास को प्रस्तुत करना चाहते हैं जिस से उपर्युक्त मत की सत्यता स्पष्ट हो जाती है । पहले यह देखना है कि संस्कृत नाट्य-शास्त्र में अेकांकी का

विकास कितना हुआ और उसकी कौन विशेषताएँ कौन कौन सी थी ? उन के मूल तत्व हिन्दी के प्रारम्भ कालीन अेकांकी साहित्य में कहाँ तक विद्यमान हैं ?

साहित्य दर्पणकार ने दृश्य-काव्य के दो भेद बताये हैं । रूपक और उपरूपक । रूपक के दस भेद हैं । यथा - 1. नाटक 2. प्रकरण 3. भाण 4. व्यायोग 5. समवकार 6. डिम 7. ईहामृग 8. अंक 9. वीथी 10. प्रहसन

उपरूपक के अठारह भेद हैं :- 1. नाटिका 2. त्रोटक 3. गोष्टि 4. सट्टक 5. नाट्य-रासक 6. प्रस्थान 7. उल्लाप्य 8. काव्य 9. प्रेंखण 10. रासक 11. संलापक 12. श्रीगदित 13. शिल्पक 14. विलासिका 15. दुर्मल्लिका 16. प्रकरणी 17. हल्लीश 18. भाणिका /1/

इन विभेदों में अैसे रूपक और उपरूपक हैं जो केवल अेक अंक में समाप्त हो जाते हैं । डा. कीथ ने अेक अंक में समाप्त होनेवाले इन नाटकों को अेकांकी संज्ञा से अभिहित किया है /2/ रूपकों में भाण, व्यायोग, अंक, वीथी, और प्रहसन, उप रूपकों में गोष्टी, नाट्य-रासक, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, श्रीगार्दत, विलासिका, हल्लीश और भाणिका अेक अंकवाले नाटक हैं जो अेकांकी के भिन्न भिन्न प्रकार हैं । साहित्य दर्पणकार ने इन के लक्षण बताते हुअे उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं । उस के अनुसार इन प्रकारों के विस्तृत लक्षण निम्न प्रकार हैं ।

1. भा ण :- आधुनिक अेकांकी के प्रकार "मोनो ड्रामा" से भाण मिलता जुलता है । हिन्दी और अंग्रेजी में इस प्रकार का प्रयोग आज भी हो रहा है । पश्चिमी साहित्य में हमें पद्य और गद्य दोनों में मोनोड्रामा मिलते हैं। अंग्रेजी में कवि ब्राउनिंग के मोनोड्रामा प्रसिद्ध हैं । हिन्दी में सेठ गोविन्ददास का नाम इस क्षेत्र में प्रसिद्ध है । उन के अेकांकी नाटक "सच्चा जीवन" , "प्रलय और सृष्टि," "अलबेला", "शाप और वर" इसी पद्धति पर लिखे गये हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने "विषस्य विषमौषधम्" को भाण नाम से ही अभिहित किया है ।

/1/ साहित्य दर्पण - सृष्टः परिच्छेद - श्लोक 3, 4, 5

/2/ The Anka, or One-Act-Play is represented by very few specimens
A.B. Keith : The Samskrit Drama P. 268.

मण, "व्यक्तयाम् वाचि" धातु से इस की व्युत्पत्ति हुई है । भारतीवृत्ति से युक्त व्यक्त भाषण की अधिकता के कारण "भाण" की संज्ञा से इस प्रकार को अभिहित किया गया है । /:/ इस में अंक भी अेक होता है और पात्र भी ।

धूर्त चरित का चित्रण हुआ करता है, नानाविध लोकोपयोगी व्यवहारों का उपनिबन्ध रहा करता है । अेक कुशल, बुद्धिमान विट स्वानुभूत अथवा परानुभूत विषयों का परिचय सामाजिकों को देता है । वार्तालाप कल्पित व्यक्तियों के साथ होता है । रंगमंच पर इस का नायक आकाश की ओर देखकर इस तरह वार्तालाप करता है मानों उस के वचनों को सुनने और उत्तरदेनेवाला कोई व्यक्ति ऊपर हो । युक्ति प्रत्युक्तियों का अभिनय स्वयं नायक को ही करना पड़ता है। इस में वीर और श्रृंगार रसों की अभिव्यंजना होती है । इतिवृत्त कल्पित होता है पर उसका मुख्य उद्देश्य परिहासपूर्ण धूर्तता का प्रदर्शन करना है । इस में भारती वृत्ति का आश्रय लिया जाता है । मुख और निर्वहण सन्धियों का प्रयोग होता है । इन्हीं लास्यांगों का प्रयोग अभिनय को प्रभावोत्पादक बनाने के हेतु किया जाता है । संस्कृत में वामन भट्ट बाण रचित श्रृंगार भूषण प्रसिद्ध भाण है । इस में अेक ही मुख्य पात्र है जिसका नाम विलास शेखर हैं । वह वसंतोत्सव पर मदनमंजरी से मिलने निकलता है और काल्पनिक प्रश्नोत्तरी के द्वारा मेले के विविध दृश्यों का वर्णन करता है 2/ रामभद्र दीक्षित रचित "श्रृंगार तिलक" वत्सराज कृत " कार्पुर" चरित" और "लीलामधुकर" उल्लेखनीय हैं । हिन्दी में भी भाण की रचना का मुख्य उद्देश्य धूर्तता का प्रदर्शन ही है । बाबू भारतेन्दु रचित "विषस्य विषमौष्धम्" में मलहारराव गायकवाड़ ने अपनी प्रजा पर जो अत्याचार किये थे उनका वर्णन किया गया है । इस के वार्तालाप आकाश भाषित के ढंग पर लिखे गये हैं । इस प्रकार संस्कृत के भाण के मुख्य तत्व हिन्दी के प्रारंभ कालीन अेकांकी के प्रयोग में दृष्टिगोचर होते हैं । आगे चलकर इस का रूप मोनो-ड्रामा के शिल्प से निखर उठा है । सेठ गोविन्द दास के नाटक स्वीडन के प्रसिद्ध नाटककार स्ट्रेन्डबर्ग तथा अमेरिका के "ओनील" की शैली पर पाश्चात्य टेक्नीक के अनुकरण पर लिखे गये हैं । "प्रलय और सृष्टि"

/:/ भारतीवृत्ति प्रधानत्वाद्भाणः - दशरूपक पृ. 168

2/ The Sanskrit Drama. P. 263. Dr. Keith.

में नामक नोटबुक, चश्मा, कलम, लाइट हाउस टावर, पैंटा, चिमनी, बादल आदि का संबोधन कर समाज तथा प्रजा की मनोवृत्तियों की आलोचना करता है । "शाप और वर" में पति से पीड़ित स्त्री मृत्यु से पूर्व अपने पति का संबोधन कर अपने विगत जीवन की विषदपूर्ण स्मृतियों को प्रकट करती है । "अलबेला" में घोड़े का संबोधन करते हुये अेक व्यक्ति जमीन्दारों और अन्य शेषकों केविरुद्ध अपने विचार व्यक्त करता है । "सच्चा जीवन" में आकाश भाषित का प्रयोग किया है गया है । 'अेक युवक सच्चे जीवन के संबंध में अपने विचार प्रकट करता है । उन के मन में कई तरह की शंकायें उठती हैं, विचित्र प्रकार के विचार उठते हैं । उनको आकाश भाषित के द्वारा सामाजिकों को सुनाता है । इस तरह सेठ गोविन्ददास के सोनो-ड्रामों में व्यक्ति की आन्तरिक उलझनों का विश्लेषण किया गया है । और उस के प्रस्तुतीकरण का ढंग पाश्चात्य शिल्प से प्रभावित है ।

2. व्या यो ग :- आधुनिक अेकांकी कला के दृष्टिकोण से व्यायोग पूर्ण रूप से अेकांकी का स्वरुप है । अनेक पुरुषों से युक्त दृश्य का अंकन किया जाता है । अतः इस प्रकार के लिये "व्यायोग" का नाम दिया गया है । (1, 2)इस में अेक ही अंक की योजना होती है और अेक दिन का ही वृत्तान्त चित्रित्र होता है । आधुनिक अेकांकी कला के मुख्य तत्वों में संकलन श्रेय का निर्वाह भी अेक है । तीनों संकलनों में काल संकलन का अधिक महत्वपूर्ण स्थान है और सबलेखक इस संकलन का निर्वाह अनिवार्य मानते हैं । संस्कृत के व्यायोग में काल संकलन का पूर्ण निर्वाह रहता है । व्यायोग का इतिवृत्त प्रख्यात रहता है । स्त्री पात्रों की संख्या बहुत कम और पुरुष पात्रों की संख्या प्रचुर हुआ करती है । नायक धीरोद्धत, राजर्षि अथवा दिव्य पुरुष होता है । हास्य, शृंगार और शान्त - इन तीनों को छोड़कर अन्य रसों में से किसी को भी अंगी अथवा प्रधान रुप में रखा जा सकता है । कारण यह है कि इस में अैसे युद्ध और संघर्ष का वर्णन होता है जिस का कारण स्त्री न हो । अतः इस में शृंगार हास्य और शान्त का परिपाक नहीं होता ।

(1,2) The Vyayoga is, as its name suggests, a military spectacle. The Sanskrit Drama P. 347. Dr. Keith

व्यायुज्यन्ते स्मिन्बहव: पुरुषा इति व्यायोग: - दशरुपकम पृ. 168

संभवतः इसी कारण से कौशिक वृत्ति भी वर्जित है । इस के लिये गर्भ और विमर्श सन्धियों की योजना अपेक्षित नहीं है ।

महाकवि भास कृत पांच अेकांकी मध्यम व्यायोग, दूत वाक्य, दूत घटोत्कच, कर्ण भार और अरूभंग व्यायोग हैं । इन नाटकों में उपर्युक्त लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं । प्रहलादन देव रचित "पार्थ पराक्रम" में महा भारत का वह अंश चित्रित है जिस में अर्जुन कौरवों द्वारा अपहृत गायों को युद्ध में उन्हें पराजित कर प्राप्त करते हैं । विश्वनाथ रचित "सौगन्धिका हरण", वत्सराज कृत "किरातार्जुनीय", कंचन पंडित रचित "धनंजय-विजय" संस्कृत के सफल व्यायोग हैं । इन सब में अैसी घटनाओं का चित्रण हुआ है जिस से काल संकलन का पूरा निर्वाह हो पाया है । हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने "धनंजय-विजय" नाटक का निर्माण कंचन पंडित रचित "धनंजय विजय" व्यायोग के लक्षणों के आधार पर किया है । इस में महा+ भारत के पाण्डवों के अज्ञातवास की घटना वर्णित है जिस में अर्जुन द्वारा कौरव पराजित होते हैं और पाण्डव प्रकटित होते हैं । भारतेन्दु जी का यह अनुवाद नाटक है । किन्तु फिर भी यह स्वतंत्र रचना की भाँति मौलिक तथा प्रभावोत्पादक प्रतीत होता है । इस में पुरुष पात्रों की संख्या अधिक है और स्त्री पात्र कम है । इस का नायक अर्जुन है जो धीरोदात्त और दृढव्रती है । वीर रस का परिपाक हुआ है । इस में स्थान और समय के संकलन का सुन्दर निर्वाह किया गया है ।

3. अंक :- (उत्सृष्टिकांक)- माता का क्रोड जिस तरह पुत्रों केलिअे आश्रय स्थान है उसी तरह साधारण नायकादि का आश्रय बनता है । अतः इस प्रकार को "अंक" की संज्ञा से अभिहित किया गया है । नाटक के "अंक" से इस की भिन्नता स्पष्ट करने केलिअे दूसरा नाम उत्सृष्टिकांक का प्रयोग किया गया है । इस में साधारण पुरुषों को नायक के रूप में चित्रित किया जाता है । यह करुण रस प्रधान है । नारी विलाप का वर्णन प्रचुर मात्रा में होता है । वृत्तिवृत्त प्रख्यात होता है जिस का वर्णन नाटककार अपनी कल्पना द्वारा विस्तार के साथ करता है । भाण के समान इस में सन्धि और वृत्ति की योजना हुआ करती है । जय-पराजय, युद्ध आदि की सूचना मात्र दे दी जाती है । करुण रस प्रधान होने के कारण इस में निर्वेद से युक्त वचनों का बाहुल्य रहता है। प्रायः बड़े नाटक के अन्दर

छोटे रूप में अंक के उदाहरण मिलते हैं । "शर्मिष्ठा ययाति" सफल अंक का उदाहरण है । हिन्दी में इस प्रकार का प्रयोग नहीं हुआ है ।

4. वी थी :- "वीथी" मार्ग को कहते हैं । मार्ग जिस तरह लोगों केलिये उपयोगी है उसी तरह यह रूपक भेद अंगों केलिये मार्ग-प्रदर्शन करता है। अतः इस का "वीथी" नाम अत्यन्त सार्थ है ।"" भाण की ही भाँति इस में अेक ही अंक होता है और नायक भी अेक ही रहता है । वह आकाश भाषित के द्वारा उत्तर प्रत्युत्तर का अभिनय करता है, शृंगार रस की अभिव्यक्ति अधिक होती है और इसी कारण से कैशिकी वृत्ति की प्रधानता रहती है । मुख और निर्वहण सन्धियों और पाँचों अर्थ प्रकृतियों का पालन किया जाता है । उदाहरण के रूप में "मालती वीथी" का उल्लेख मिलता है । इस प्रकार का प्रयोग हिन्दी में हैं । अेकांकी साहित्य में नहीं किया गया है ।

5. प्र ह स न :- हास्य की प्रधानता के कारण इसको "प्रहसन" संज्ञा से अभिहित किया गया है । इस प्रकार के प्रयोग हिन्दी में किये गये हैं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस का सफल प्रयोग किया है । उन के "अंधेर नगरी" "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" सफल प्रहसन के उदाहरण हैं । हास्य रस प्रधान होने के कारण इस में अधम प्रकृति के नायक को लेकर कल्पित इतिवृत्त का चित्रण होता है । भाण की ही भाँति इस में सन्धि, सन्ध्यंक, लास्यांक और अंक की रचना होती है । इस में विष्कंभक और प्रवेशक की रचना संभवतः इसलिये अपेक्षित नहीं होती कि यह अेक अंक के छोटे इतिवृत्त का नाटक है । रौद्र रस की अभिव्यक्ति के उपयुक्त भारभटी-वृत्ति इस केलिये वर्जित बतलाई गई है । अगर भारभटी वृत्ति काम में लायी गई तो हास्य रस का परिपाक नहीं होता । रसाभास की संभावना रहती है । इस के 3 प्रकार हैं । (1) शुद्ध प्रहसन (2) संकीर्ण प्रहसन (3) विकृत प्रहसन शु/शु शुद्ध प्रहसन में तपस्वी, सन्यासी और ब्राह्मण को धृष्ट नायक के रूप में चित्रित किया जाता है । आजकल के नाटकों में जिस तरह सामाजिक दुर्बलताओं पर चोट करते हुये उच्च कुल संपन्न या उन्नत कहलानेवाले व्यक्तियों पर व्यंग्य कसा जा रहा है उसी तरह संस्कृत के शुद्ध प्रहसन में बाह्य रूप से उत्तम कहलानेवालों की आंतरिक कुरूपता पर प्रकाश डाला गया है जिस से

"" वीथी वीथ्यौ मार्गः अंगानां पंक्तिर्वा - दशरूपकम

हास्य की उत्पत्ति होती है । संकीर्ण प्रहसन में किसी अधम प्रकृति के व्यक्ति का नायक के रूप में चित्रण होता है । इस प्रकार के चित्रणके मूल में भी कहीं व्यंग्य और हास्य को उत्पन्न करने की प्रवृत्ति रहती है । अतः इस का नायक अधम प्रकृति का रहता है जिस के कार्यकलाप से अेक ओर विनोद की उपलब्धि होती है तो दूसरी ओर अैसे आचरणवाले व्यक्तियों को चोट लगती है । विकृत प्रहसन में नपुंसक, कंचुकी, तापस लोग, कामुक चारण और योद्धा लोगों की वेषभूषा और बोलचाल का अनुकरण किया जाता है । यह आजकल के मिमिक (mimic) से साम्य रखता प्रतीत होता है । मिमिक अेक्शन में किसी की अच्छी-बुरी सभी आदतों का इस तरह अनुकरण किया जाता है कि अेक ओर उस से हँसी की फव्वारें फूट पड़ती हैं तो दूसरी ओर उस व्यक्ति के लिअे सुधार की शिक्षा भी दी जाती है । गाँवों में त्योहारों के अवसर पर ग्राम के मुखिया लोगों की जो नकल की जाती है वह इसी तरह की है । संस्कृत के विकृत प्रहसन के लक्षण इन दोनों से इसलिअे मिले हुअे प्रतीत होते हैं कि इन सब का मुख्य उद्देश्य हास्य व्यंग्य की सृष्टि करता है । संस्कृत साहित्य में प्रहसन अधिक लोक-प्रिय रहा है । शुद्ध प्रहसन केलिअे कन्दर्पकेलि और संकीर्ण प्रहसन केलिअे धूर्तचरित उदाहरण के रूप में लिअे जा सकते है । शंखधर कवि राज कृत "लटकमलक" भी संकीर्ण प्रहसन है । इस प्रहसन में अैसी प्रेमिका का समागम धन्वन्तरा नामक अेक मध्यस्थ के ~~अर~~ घर में होता है । प्रेमिका के गले में मछली की हड्डी अटक जाती है तो अेक वैद्य लाया जाता है जो चिकित्सा नहीं जानता । पर वह वैद्य अैसे हास्यपूर्ण कार्य कलाप करता है कि नायिका को हँसी के कारण पेट में बल पड़ते हैं । इस तरह नायिका के हँसने से हड्डी स्वयं निकल जाती है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सुधारवादी दृष्टिकोण से अपने दोनों प्रहसनों "अंधेर नगरी" तथा "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" की रचना की है । ये पूर्ण रूप से संस्कृत शैली के न होते हुअे भी संस्कृत के प्रहसनों से कुछ अंशों में मिलते हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने संस्कृत नाट्य-कला का ज्यों का त्यों अनुकरण नहीं किया है । उन्होंने नाटक पर अपने अेक लेख में कहा है कि आज की बदली हुई परिस्थितियों में संस्कृत नाट्य-कला के सभी तत्वों को ज्यों का त्यों ग्रहण नहीं किया जा सकता । भारतेन्दु ने संस्कृत और पाश्चात्य दोनों नाट्यकलाओं से प्रभाव ग्रहण किया है और दोनों से सर्वथा स्वतंत्र रूप से हिन्दी नाट्य-कला निर्माण करने का सफल प्रयत्न किया है । इसी कारण से उन के प्रहसनों के रूप संस्कृत प्रहसनों के प्रकार से साम्य रखते हुअे भी उन से भिन्न हैं । "अन्धेरी नगरी" में तत्कालीन तथाकथित राजाओं पर

व्यंग्य क्या गया है । संस्कृत प्रहसन की भाँति यह हास्य व्यंग्य प्रधान है । भारतेन्दु ने इस की रचना सोद्देश्य ही किया है । "जहाँ न धर्म, न बुद्धि नहिं नीति न सुजन समाज ने ऐसा हि आजुहि नसे, जैसे चौपट राजा" प्रहसन के अंत में उस मूर्ख राजा को फाँसी पर चढ़ाया जाता है । इस में तत्कालीन यथार्थ का चित्रण इस तरह हुआ है कि पाठक या दर्शक का मन आन्दोलित हो उठती है और उस स्थिति के निवारण करने की आकांक्षा भी उस में प्रबल हो उठती है । इसी प्रकार "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" में ऐसे लोगों पर तीक्ष्ण व्यंग्य का कंटाक्ष किया गया है जो माँस-भक्षी और मदिरा सेवी है । और वेद अेवम् धर्म के नाम पर हिंसा और अत्याचार करते हैं । इस प्रहसन में चित्रित सभी पात्र माँस और मदिरा को जीवन केलिअे आवश्यक समझते हैं और अपने मन के समर्थन केलिअे वेद, स्मृति और भागवत के प्रमाणों को प्रस्तुत करते हैं । इस तरह इस में हिंसा और अहिंसा के भेद को स्पष्ट करते हुअे उनकी व्याख्या की गई है ।

इस प्रकार रुपकों में अेक अंकवाले नाटकों का विकास द्रष्टव्य है और इन में से कुछ के अनुसरण पर हिन्दी के प्रारंभ कालीन अेकांकियों का प्रणयन किया गया है । उसी तरह उपरुपकों में भी अेक अंकवाले नाटक के प्रकार हैं जिन के लक्षण साहित्य-दर्पण के अनुसार इस प्रकार हैं :-

(1) <u>गो ष्टी</u> :- इस प्रकार का प्रयोग हिन्दी में नहीं किया गया हैं । इस में नौ या दस साधारण श्रेणी के पुरुषों का चरित्र वर्णित होता है । स्त्री पात्र पाँच या छः होते हैं । साधारण श्रेणी के पुरुषों के चरित्र के वर्णित होने के कारण संभवतः इस में उदात्त वचन नहीं रहते । यह काम-शृंगार प्रधान होता है । कैशिकी-वृत्ति की प्रधानता रहती है । जो शृंगार की अभिव्यक्ति केलिअे अत्यन्त उपयुक्त है । इतिवृत्त के छोटे होने के कारण गर्भ और विमर्श सन्धियाँ नहीं होती । उदाहरण के रुप में रैवत मदनिका लिया जा सकता है ।

(2) <u>ना ट्य रा स क</u> :- इस में लय और ताल का पर्याप्त स्थान और महत्व है । इस का नायक उदात्त प्रवृत्ति का होता है और उस का सहायक पीठमर्द होता है । शृंगार के साथ साथ इस में हास्य रस को प्रधान रस रखा जाता है । नायिका बालक सदृश होती है । मुख और निर्वहण सन्धियों का निर्वाह होता है । दसों लास्यांग इस केलिअे अपेक्षित हैं । कुछ

नाट्याचार्यों की दृष्टि में प्रतिमुख-सन्धि नहीं रहा करती । इस का कारण संभवतः यह हो सकता है कि छोटे इतिवृत्त को क्षिप्रता के साथ दो सन्धियों में करने से अधिक प्रभाव की व्यंजकता होती है । कथानक को विस्तार देने की अपेक्षा प्रारंभ और उपसंहार में उस के स्वरुप को संवारना अधिक उपयुक्त समझा गया । अतः मुख और निर्वहण सन्धियों के निर्वाह अनिवार्य बतलाया गया है । इस प्रकार को गीति-नाट्य की कला से भी कुछ लोगों ने अभिहित किया है । डा. कीथ का कथन है कि The Natya Rasaka a ballet and pantomime. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने "भारत दुर्दशा" नामक नाटक को नाट्य रासक का नाम दिया है । संस्कृत नाट्य रासक के अनुसरण पर इस का प्रणयन हुआ है । इस में छः दृश्य हैं । राजनीतिक समस्याओं के इतिवृत्त को लेकर रचे गये हिन्दी नाटकों में यह प्रथम नाटक है । इस में भारत के प्राचीन गौरव के दिग्दर्शन के साथ साथ तत्कालीन अवनति के कारण भी प्रस्तुत किये गये हैं । इस नाटक के सभी पात्र प्रतीक पात्र हैं । इस का नायक स्वयं भारत-वर्ष है और प्रतिनायक भारत दुर्दश के सहायक सेनानायक के रुप में सत्यानाश रोग, आलस्य, मदिरा, अंधकार आदि आते हैं । भारत भाग्य भी अेक पात्र है जो भारत का उद्धार करने की चेष्टा करता है । इस तरह प्रतीकात्मक पात्रों की सहायता से तत्कालीन सामाजिक दुरवस्था का अंकन भारतेन्दु ने इस में किया है । नान्दी का प्रयोग इस में नहीं है । मंगलाचरण का प्रयोग भी इस प्रकार किया गया है कि नाटक से वह पृथक नहीं, उसी से मिला हुआ है । गीतों का समावेश भी इस में किया गया है । नाटक के इस संक्षिप्त परिचय से विदित होता है कि इस में संस्कृत के नाट्य रासक के पूरे लक्षण नहीं मिलते । पर थोडे लक्षणों को ग्रहण कर इस का निर्माण हुआ है । लय ताल युक्त का होना, हास्य व्यंग्य का पुट रहना, नायक के उदात्त प्रकृति का होना, दो सन्धियों का निर्वाह होना आदि लक्षण इस में प्राप्त होते हैं । यह पहले ही बताया जा चुका है कि भारतेन्दु ने संस्कृत नाटकों के कुछ ग्राह्य तत्वों को ही लिया था ।

(3) <u>उल्लाप्य</u> :- इस का इतिवृत्त देवता संबंधी होता है । नायक उदात्त प्रकृति का है । श्रृंगार, हास्य और कण रस की अभिव्यक्ति होती है । इसे सुन्दर बनाने केलिअे संग्राम के वर्णन "अस्त्र-गीत" के गायन के सहारे किये जाते हैं । इस में चार नायिकाओं का चित्रण होता है । देवी महादेव इस का उदाहरण है । हिन्दी में इस प्रकार का प्रयोग नहीं मिलता ।

(4) <u>का व्य</u> :- यह हास्य रस प्रधान है । आरभटी वृत्ति को छोड़कर अन्य वृत्तियाँ इस के लिऐ अपेक्षित हैं । कारण यह है कि आरभटी वृत्ति रौद्र रस के परिपाक केलिऐ अनुकूल होती है । हास्य रस की अभिव्यक्ति में यह बाधा उपस्थित करती है । नायक और नायिका दोनों उदात्त प्रकृति के लोग हुआ करते हैं । खण्डमात्रा, द्विपादिका, मान ताल आदि गीत भेदों से यह अलंकृत रहता है । केवल मुख और निर्वहण सन्धियाँ अपेक्षित हैं । मध्य की प्रतिमुख गर्भ और विमर्श सन्धियों से कथानक का विस्तार हो जाता है । अेक अंक के होने के कारण कथानक का संक्षिप्त में निर्वाह होना आवश्यक है । अवलोक टीका के अनुसार यह पहले मूक-नृत्य था । तत्-पश्चात् इस रूप में विकसित हुआ था । यादवोदय इस का उदाहरण है ।

(5) <u>प्रे ष ण</u> :- इस में नीच प्रकृति का नायक चित्रित किया जाता है । सूत्रधार की आवश्यकता इस के लिऐ नहीं है । न इस में विष्कंभक होता है न प्रवेशक । छोटी सी घटना के चित्रण में विष्कंभक और प्रवेशक केलिऐ स्थान ही कहाँ रहता । बड़े नाटक इन की अपेक्षा रखते हैं । उसी तरह पाँचों सन्धियों में से मुख, प्रतिमुख, निर्वहण सन्धियाँ इस केलिऐ अपेक्षित हैं । कथानक को विस्तृत रूप देने की आवश्यकता जब न रही तो गर्भ और विमर्श सन्धियों का निर्वाह अनावश्यक होता है । द्वन्द्व युद्ध और सरोष-भाषण आवश्यक हैं । इसी कारण से आरभटी वृत्ति के साथ अन्य वृत्तियाँ भी इस में होती हैं । नान्दी और प्ररोचना नेपथ्य से पढ़ी जाती है । "बालिवध" इस का उदाहरण है ।

(6) <u>रा स क</u> :- इस में पाँच पात्र होते हैं । नायक पुरुष और नायिका प्रसिद्ध रमणी हुआ करती है । काव्य आदि अन्य उपरूपकों की भाँति छोटी आकृति के अेक अंकवाले नाटक होने के कारण इस में केवल मुख और निर्वहण सन्धियों का निर्वाह मात्र होता है । भाषा तथा विभाषा का प्रयोग होता है । भारती तथा कैशिकी वृत्तियाँ होती हैं । इस में सूत्रधार की आवश्यकता नहीं है । नृत्य गीत आदि कलाऐं अपेक्षित हैं । नान्दी गायन श्लिष्ट पदों में होता है । इस में उत्तरोत्तर उदात्त भावों का विन्यास किया जाता है ।

(7) श्री गा दे त :- इस का इतिवृत्त प्रख्यात होता है और नायक धीरोदात्त प्रकृति का प्रख्यात पुरुष होता है । नायिका का भी प्रख्यात होना आवश्यक है । इस में भी रासक की भाँति गर्भ और विमर्श सन्धियाँ नहीं हुआ करतीं । भारती वृत्ति का बाहुल्य रहा करता है और 6 "श्री" शब्द का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता है । इस का अेकदूसरा प्रकार भी है । उस में श्री वेषधारिणी नटी रंग-मंच पर अेकर कुछ गाती और पद पढ़ती है । यह भी अेक अंक का है और भारती-वृत्ति का प्राचुर्य इस में रहता है । क्रीडा रसातल, और सुभद्राहरण इस के उदाहरण है । सुभद्राहरण के नायक अर्जुन धीरोदात्त तथा प्रख्यात पुरुष है और नायिका सुभद्रा भी प्रख्यात है ।

8. विलासिका :- यह शृंगार रस प्रधान है । लास्य के दसों अंग अपेक्षित हैं । विदूषक, विट और पीठमर्द का चित्रण आवश्यक है । गर्भ और विमर्श सन्धियाँ इस में भी नही होतीं । अधम प्रकृति का नायक रहता है । इतिवृत्त छोटा और वेष-भूषा पर विशेष धयान दिया जाता है । इस का कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं है ।

(9) ह ल्ली श :- इस का नायक उदात्त वचन बोलनेवाला रहता है । सात, आठ या दस स्त्री पात्र हुआ करते हैं । इस में राग ताल लय आदि का प्राचुर्य रहा करता है । इसी कारण से कौशिकी-वृत्ति इस के लिअे अपेक्षित है । यह भी आकार में छोटा है अतः केवल मुख और निर्वहण अन्धियों का निर्वाह होता है ।

(10) भा णि का :- यह भाण के समान अेक अंक का है । नायक नीच वंश का व्यक्ति और नायिका उदात्त प्रकृति की रहती है । सुन्दर नेपथ्य रचना इस केलिअे अपेक्षित है । मुख और निर्वहण सन्धियों का निर्वाह और कैशिकी तथा भारती-वृत्तियों की योजना की जाती है । इस के सात अंग होते हैं । - 1. उपन्यास 2. विन्यास 3. साध्वस 4. विबोध 5. समर्पण 6. निवृत्ति 7. संहार । उपन्यास का अभिप्राय प्रसंगवश कार्य का [illegible] कीर्तन है । निर्देश द्योतक वचन विन्यास है । साध्वस का अभिप्राय मिथ्या अहंकार का प्रदर्शन है । कोप-पूर्वक निन्दा बहुलवचन समर्पण है, निदर्शन का उपन्यास निवृत्ति है और कार्य की समाप्ति संहार है । कामदत्ता इसका उदाहरण है ।

इन भेद विभेदों का परीक्षण करने पर विदित होता है कि इनका इस प्रकार का वर्गीकरण कुछ निर्धारित आधारों पर नाट्याचार्यों ने किया है । कहीं चरित्र के आधार पर विचार किया गया तो कहीं पात्रों की संख्या को दृष्टि में रखकर वर्गीकरण किया गया है । कहीं वृत्ति सन्धि आदि के विचार से लक्षण निर्धारित किये गये हैं । संस्कृत अेकांकियों की जटिलता का बोध भी इस विवेचन से स्पष्ट होता है । यद्यपि ये सभी अेक ही अंकवाले नाटक हैं फिर भी आधुनिक अेकांकी में और इन में पर्याप्त अंतर है । प्रहसन और भाण का आधुनिक अेकांकी से अंतर दिखाते हुये डा. कीथ ने लिखा है :- " The Prahasana and Bhanas are hopelessly coarse any modern stand point, but they are certainly often in a sense artistic productions. The writers have not the slightest desire to be simple; in the Prahasana their tendency to run riot is cheked, as verse is confined to erotic stanzas and descriptions and some action exists. In the Bhana, on the other hand the right to describe is paramount and the poets give themselves full reim.

डा. कीथ के कथन का तात्पर्य यह है कि आधुनिक अेकांकी कला की दृष्टि से उच्च कोटि के न होते हुये भी भाण और प्रहसन कलात्मक है । लेकिन यह पूर्णत: सत्य नहीं है । संस्कृत नाट्य परंपरा काल-प्रवाह में लुप्त हो गई है । आज उन सब प्रकारों का उल्लेख मात्र ही मिलता है । यदि उनकी परम्परा बनी रहती और उन उन प्रकारों का प्रस्तुतीकरण रंगमंच परकिया जाता तो उन की कलात्मक विशिष्टताओं का बोध भी होता। यह तो स्पष्ट है कि उस काल में अनेक प्रकार के अेकांकी नाटक भी रचे जाते थे और उनका प्रस्तुतीकरण भी रंगमंच पर होता था । क्यों कि व्यापक प्रचार के आधार पर ही शास्त्रों निर्मित होता है । लक्षणकारों की अधिक संख्या इस का साक्षी है । कितने ही लक्षण ग्रन्थों की रचना की गई थी । प्रचार तथा कलात्मक विशिष्टता के अभाव में इतने लक्षण ग्रन्थों तथा शास्त्रों की रचना नहीं होती । उन के वास्तविक मूल्य की पहचान केवल अनुमान के द्वारा, शास्त्रों में वर्णित लक्षणों के आधार पर करना कठिन है । इसी कारण से कई प्रकार के विचार इन के संबन्ध में प्रकट किये गये हैं जो भ्रमात्मक भी हैं ।

हाँ यह तो सत्य है कि आधुनिक अेकांकी कला से संस्कृत अेकांकी-कला भिन्न है । संस्कृत की नाटक कला की भाँति अेकांकी नाटक कला भी नियमों से बन्धित है । मंगलाचरण, नान्दी प्रस्तावना का होना पाँचों कार्य-विस्थाओं पाँचों अर्थ प्रकृतियों और पाँचों सन्धियों का निर्वाह आवश्यक माना गया । अन्त में भरत-वाक्य का प्रवेश भी अपेक्षित है । अेकांकी नाटकों के लक्षणों में भी हम इन नियमों का उल्लेख देख चुके हैं । हाँ, इतना तो अवश्य है कि जितना बड़े नाटकों में इन नियमों का निर्वाह होता है, उतना इन अेकांकी नाटकों में नहीं होता । क्योंकि इन के कथानक की परिधि सीमित है । नाटककार को रचना करने के पहले इन नियमों पर ध्यान देना ही पड़ता है । यद्यपि आधुनिक अेकांकी के रचना विन्यास में भी थोड़े नियमों का पालन करना पड़ता है, पर आज के नाटककार इस हद तक स्वतन्त्र है कि प्रभावोत्पादकता देखिये, अपनी इच्छा के अनुकूल कलापूर्ण परिवर्तन कर, नियमों की अवहेलना कर सकते हैं नियमों की अवहेलना की जाने पर भी कलात्मक होने के कारण उन के नाटक उत्कृष्ट ही माने जाते हैं । आधुनिक नाटकों में नाटकीय संकेत अधिक लंबे और व्यापक होते हैं । अैसा मालूम पड़ता है, संस्कृत नाटकों में दृश्य विधान के संकेत देने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी कि नाटककार और निर्देशक उस कला में अधिक निष्णात थे । नहीं तो लक्षण ग्रन्थों में उन का भी उल्लेख अवश्य किया जाता ।

संस्कृत नाटककारों ने अेकांकी नाटक के भिन्न भिन्न प्रकारों का प्रयोग किया था । पर उन सब के उदाहरण उपलब्ध नहीं है । 12 वीं सदी से पूर्व भाण और प्रहसन के उदाहरण नहीं के बराबर है । शंखधर कविराज कृत "लटक मेलक", काशिपति कविराज का "मुकुन्दानन्द", ज्योतीश्वर का "धूर्त समागम", जगदीश्वर कृत "हास्यार्णव", गोपीनाथ कृत "कौतुक सर्वस्व" वामन भट्ट बाण रचित "शृंगार भूषण; सोमराज दीक्षित का "धूर्त नर्तक" प्रहसन या भाण माने गये हैं । भास कृत "पाँच अेकांकी मध्यम व्यायोग, दूत वाक्य, दूत घटोत्कच, कर्ण भार, ऊरु-भंग - व्यायोग हैं । प्रहलादन देव का पार्थ पराक्रम, वत्सराज का "किरातार्जुनीय", विश्वनाथ का "सौगन्धि काहरण" कंचन पण्डित का "धनंजय विजय", मोक्षादित्य का "भीम विक्रम व्यायोग" , रामचन्द्र कृत "निर्भय भीम" प्रसिद्ध व्यायोग हैं । उपरूपकों में गोष्टी का उदाहरण रैवत मदनिका है । अंक का शर्मिष्ठाययाति,

प्रेषण का "वालिवध", श्रीगार्दत का "माया कापालिक" और हल्लीश का "केलिखेतक उदाहरण के रूप में मिलते हैं । संस्कृत नाट्य परंपरा लुप्त हो जाने के कारण केवल अब हमें उदाहरणों के उल्लेख मात्र मिलते हैं ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सामने इन्हीं संस्कृत अेकांकी नाटकों की परम्परा थी और उन्होंने उन में से कुछ प्रकारों का प्रयोग मौलिक ढंग से किया है । उन पर बंगला नाट्य साहित्य के माध्यम से पाश्चात्य नाट्य साहित्य का प्रभाव भी पड़ा था । दोनों से प्रेरणा पाकर उन्होंने हिन्दी में नाट्य साहित्य का श्री गणेश किया था । अब हम अंग्रेजी साहित्य में अेकांकी के उद्गम के इतिहास को भी नीचे प्रस्तुत करना चाहते हैं जिस से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी अेकांकी की विधा के उद्गम और विकास में उसका कितना हाथ है ?

अंग्रेजी साहित्यिक परम्परा में अेकांकी के उद्भव की कहानी 10 वीं शताब्दी के धार्मिक अवसरों पर अभिनीत संत जीवनियों में मिलती है । डा. अेस. पी. खन्ना ने अपनी "नाटक की परख" में इस पर विचार करते हुअे लिखा है - "ईसाई भिक्षु अपनी धार्मिक शिक्षा प्रसार के लिअे कुछ मनोरंजक वातावरण निर्मित किया करते थे । उन्होंने संतों के जीवन के कुछ रोचक तथा अद्भुत रस से पूर्ण उन स्थलों को चुना, जो दर्शक को देर तक आकर्षित रख सकते थे । इन्हें वे नाटकीय रूप में प्रदर्शित करते थे । इन कथानकों में कहीं प्रेम की पराकाष्टा थी, कहीं दया और करुणा की विजय थी, कहीं सहानुभूति की अविरल छाया थी और कहीं बलिदान और त्याग की मूर्तिमान भावना थी । इन्हीं भावनाओं में हमें अेकांकी की छाया मिल सकती है । अंग्रेजी की "मिस्टरिकिलस" और "मोरॉलिटीज" नाटकों की शैलियों में आधुनिक अेकांकी के तत्व अलग रूप में मिलते हैं । 17-18 वीं शताब्दियों में बड़े नाटकों के पूर्व या मध्य में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से अैसे छोटे प्रहसन अस्तित्व रखनेवाले नाटक लिखे गये थे जो विशेष रूपसे हास्य युक्त हुआ करते थे । इन के सृजन के मूल में उन लोगों की सुविधा का ध्यान काम करता रहा था कि जो धनी लोग रात में देर से खाना खाते थे तथा थियेटर में निश्चित समय पर नहीं आते थे और जिन की अनुपस्थिति में नाटक का प्रारंभ नहीं हो सकता था । अतः नाटक के प्रारम्भ में ये छोटे नाटक खेले जाते थे जिनका सार्थक नाम कर्टेन रेजर (curtain - raiser) या पट-उन्नमक पड़ा था । विक्टोरियन युग में इसी रूप में अेकांकी नाटक का

प्रथम रूप प्रचलित रहा । अेकांकी का यह प्रथम रूप साधारण कोटि का अेकांकी होता था जिस में न जीवन का आदर्श था न यथार्थता और न किसी मनोवैज्ञानिक तत्व का ही विश्लेषण होता था । इस में नाटकीय संघर्ष और चरमसीमा आदि का पूर्ण अभाव था । दूसरे शब्दों में वह कलात्मक विशेषताओं से युक्त आधुनिक अेकांकी के समान पृथक् तथा विशिष्ट अस्तित्व रखनेवाली साहित्यिक विधा नहीं थी । इसी प्रकार के नाटक पेरिस के "ग्रेण्ड गिगनोल" (Grand Guignol) थियेटर में खेले जाते थे । लेकिन आगे चलकर इस रूप का काफी विकास हुआ और इस में यथार्थता और कला का सम्मिश्रण होने लगा था । यह प्रकार इतना विकसित हुआ था कि दर्शकों को बड़े नाटक से भी अधिक रोचक और आकर्षक लगा तो वे केवल पट-उन्मायक को ही देखकर चले जाने लगे । सन् 1603 में वेस्ट अेन्ड थियेटर में डब्लू डब्लू जेकब्स के " Monkey's paw " नामक नाटक को लुई अेन. पार्क्स ने पट-उन्मायक के रूप में प्रस्तुत किया तो दर्शक इसे देखने के उपरान्त मुख्य नाटक को देखे बिना चले गये थे । इस घटना के कारण बड़े नाटकों के पहले इन का प्रस्तुतीकरण समाप्त किया गया था । उसी समय से अेकांकी ने अपनी स्वतंत्र सत्ता कायम करने का प्रयत्न किया ।

इंग्लैण्ड में अेकांकी की प्रसिद्धि का प्रधान कारण रिपर्टरी आन्दोलन रहा । यह आन्दोलन विक्टोरियन युग के विरुद्ध क्रान्ति के रूप में प्रारम्भ किया गया था । विलियम आर्थर, बर्नार्ड शा तथा कुछ अन्य साहित्यकों ने इन्डिपेन्डेन्ट थियेटर की स्थापना की थी । इंग्लैण्ड के नाटक के स्वर्ण युग के सर्वोच्च डाईरेक्टर ग्रिनवल बारकर ने 1904 से 1907 तक कार्ट थियेटर में शा, गालसवर्दी तथा अन्य नाटककारों के नाटकों का अभिनय कराया था । इन की प्रेरणा से मानचेस्टर, ग्लासगो, लिवरपूल और बिर्मिंघम स्थानों पर रिपर्टरी थियेटरों की स्थापना की गई । इसी आन्दोलन की सहायता तथा प्रेरणा से अनेक क्लबों की उन्नति हुई । अनेक नाटककार, अभिनेता तथा निर्देशक प्रकाश में आये थे और अेकांकी नाटक की विशेष उन्नति हुई थी । इसी प्रकार अमेरिका में लिटिल थियेटर ने अेकांकी नाटक के विकास में पूरा योग दिया । स्काटिश कम्युनिटी ड्रामा अेसोशियेशन तथा ब्रिटिश ड्रामा लीग ने अेकांकियों की प्रदर्शनी का आयोजन कराया जिस में लगभग सात सौ सभा सोसाईटियों ने भाग लिया था ।

कथावस्तु के चयन तथा उस को प्रस्तुत करने की शैली में भी विशेष परिवर्तन तथा विकास हुआ था । इब्सन के पूर्व कृत्रिम भावुकता, रोमाण्टिक अतिरंजना, कलागत रूढ़ियों अेवम् सौन्दर्य साधना के प्राचीन मापदण्ड मर्यादा का अतिक्रमण कर चुके थे । धीरे धीरे नवीन साहित्यिक जागृति अेवं क्रान्ति केलिअे आवश्यक पृष्ठभूमि बनने लगी । इब्सन ने 19 शताब्दी के अंग्रेजी नाटकों को अतिभावुकता, जीवन से दूरी, कल्पना तथा जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं से मुक्त कर अेक नये प्रकार के स्वाभाविक यथार्थवादी घरेलू नाटक की नींव डाली । उन के नाटकों में भावुकता-पूर्ण सौन्दर्य, काल्पनिक जीवन के दृश्यों के स्थान पर तत्कालीन सामाजिक संघर्ष से उत्पन्न जटिलताअें, नये युग की समस्याअें और नग्न यथार्थवादी जीवन की झांकियाँ प्रस्तुत की गई है । उन्होंने कृत्रिमता के विरुद्ध आवाज़ उठायी । पुरानी बनावटी प्रणाली, काव्यमय अस्वाभाविक कथोपकथन, पुराना रंगमंच तथा कृत्रिमताओं का घोरविरोध कर उन का बहिष्कार किया और यथार्थवाद का प्रचार किया । विक्टोरियन युग के नाटककारों के अनुसार जो यथार्थवादी दैनिक समस्याअें नाटक के लिअे अनुपयुक्त थीं, उन्हीं को इब्सन ने कथावस्तु के रूप में ग्रहण किया । उन के " डाल्स हाउस" (Dolls House) घोस्टस (Ghosts) अेन अेनिमी आफ दी पीपुल (An enemy of the people) आदि नाटकों में अैसी समस्याओं का अंकन प्रथम बार किया गया है जिनका विवेचन उन के पूर्व नहीं हो पाया । इब्सन के पात्र जीते जागते मनुष्य थे जो दैनिक जीवन की समस्याओं से संघर्ष करते थे । इब्सन के नाटक आधुनिक सामाजिक जीवन की नित्य प्रति की घटनाओं से संबंधित समस्या नाटक थे जिन में व्यंग्य, उपहास और आलोचना का सम्मिश्रित रूप होता । इन्होंने प्रथम बार साहस के साथ समाज की दुर्बलताओं की ओर संकेत किया और नये समाज का निर्माण करने की आवश्यकता पर जोर दिया । इन के द्वारा न केवल विषय-चयन में ही परिवर्तन हुआ अपितु इन्होंने कला के क्षेत्र में भी स्वतंत्रता ली थी । नाटक के प्रथम भाग को त्याग कर नाटक का प्रारम्भ संघर्ष से किया । संघर्ष से युक्त हो कर क्षिप्रगति से कथा-वस्तु चरमसीमा तक पहुँच जाती है । इस तरह इब्सन ने अेक महान आदर्श उपस्थित कर अपनी लेखनी उठाई और मनुष्य मात्र की मुक्ति तथा पापी के प्रति भी सहानुभूति का संदेश दिया । इन के प्रभाव से नाटकों से बाह्याडंबर कृत्रिमता, स्वगत-कथन, पद्यों का प्रयोग इत्यादि का बहिष्कार हुआ और नाटक जीवन के समीप आया है ।

इब्सन का प्रभाव सब लेखकों पर पड़ा और अेकांकी पर भी अैसी विषय वस्तु का अंकन करने लगे थे जो तत्कालीन समाज से गृहीत हो कर वास्तविकता के अत्यन्त निकट थी, अेकांकी का प्रयोग जोन्स (Jones) पिनरो (Pinro) हाप्टमन (Houptmen) चेखव (Chekhove) शा (Shaw) सूडरमन (Suder man) पिरेन्डलो आदि प्रमुख नाटककारों ने किया है । Eygone O' neill and John Millington Syhge आदि की प्रतिभा अेकांकी रचना के लिअे अत्यन्त प्रखर थी और अेकांकी प्रयोग द्वारा उन की प्रतिभा का पूर्ण विकास भी हुआ था । अेकांकियों की रचना इतनी विकसित हो गई कि उन का विषय तो सर्व साधारण हैं, लेकिन वे विषय अेकदेशीय न हो कर संपूर्ण संसार की अथवा समस्त मानव जीवन की वस्तु है । सिंज का Riders to the sea, लार्ड इन्सने का A Night in an inn मेटरलिंक का The intender आदि अेकांकियों में मानव जीवन का अंकन हुआ ।

काव्य तथा अन्य साहित्यिक विधाओं के प्रयोग के द्वारा जिस तरह सार्वभौमिक अेवं विश्वसनीय सत्यों का उद्घाटन किया जाता है, उसी तरह अेकांकीकार भी अेकांकी के माध्यम से विश्वजनीन सत्यों की प्रतिष्ठा करता है । T. H. Dickanson ने अपने Play wrights of the New American theatre में लिखा है - "अेकांकी नाटक की सृष्टि और प्रसार नाटककारों के अेक अैसी कला के ढूँढ निकलने का परिणाम है जिस में ईमानदारी और सच्चाई के गुण पूर्ण रूप से विद्यमान हों । नाटककारों, नाट्यशाला के अधिकारियों, रंगमंच के मैनेजरों, रंगमंच पर दृश्य आदि के समझनेवालों आदि सभी ने ही अेकांकी नाट को नाट्यशाला में अेक नवीन शैली के उत्थान में साधन स्वरुप बनाने केलिअे सहायता की, लेकिन सब से अधिक कलाकारों को ही इस से लाभ हुआ उन्होंने इस से बहुत कुछ सीखा ।*

---

* It was in pursuit of a new and honest art of the theatre that the one-Act-Play was developed by the play wrights, producers and organizers, draughtsmen and scenery-builders co-operated to make the One-Act-Play an important step in the progress towards a new theatre Art. But it was the play-wright who learned most from the experiment.

T.H. DICKENSON'S 'PLAYWRIGHTS'

इस तरह नवीन विधा की सृष्टि का मार्ग ढूँढते ढूँढते उसी के सहारे उस कला की निपुणता तथा बारीकियों का ज्ञान लेखकों तथा प्रयोग कर्ताओं को प्राप्त हुआ था । इन अेकांकीकारों ने दैनिक जीवन तथा समाज की समस्याओं, जीवन के विभिन्न पहलुओं, परिस्थितियों को विषय-वस्तु के रूपमें ग्रहण किया और उसका प्रस्तुतीकरण इतनी शब्द-मित व्ययता, संक्षिप्तता तथा निदर्शन कुशलता के साथ किया कि अेकांकी जैसी छोटी परिधि में जीवन की विशालता तथा गंभीरता आ कर सिमट गयी है । कथोपकथन वाक्-वैदग्धयता से परिपूर्ण रचे गये हैं, चरित्रिकता का पूर्ण उन्मेष पर अधिक दृष्टि दी गई है , भाषा प्रभावोत्पादक तथा पात्रानुकूल बन गई, कुतूहल की स्थिति का अंत तक निर्वाह होने लगा । लंबे नाटकीय संकेत रंगमंच की व्यवस्था के लिये गढे/लिये नये हैं । रंगमंच की अपूर्णताओं और न्यूनताओं को दूर कर अभिनय अेकांकियों का प्रणयन किया गया । इस तरह अेक ओर कलागत कुशलता का विकास हुआ तो दूसरी ओर उस से रंगमंच की उन्नति भी हुई है । क्षिप्रगति से विकसित होने के कारण अेकांकी की विविधता दर्शनीय है । पो. अमरनाथ गुप्त ने पाश्चात्य प्रणाली के ही आधार पर अेकांकियों की विविधता को वर्गों में विभाजित किया है -- (1) समस्यामूलक अेकांकी या Problem Play जिस में अेक समस्या का अंकन किया जाता है । 2. Fantacy जो खुले स्थान पर प्रस्तुत किया जाता है । 3.प्रहसन जिस में लेखक का ध्येय दूसरों को हँसाना होता है । 4. सीरियस या गंभीर अेकांकी 5. अैसे अेकांकी जिन में लेखक का ध्येय किसी घटना, किसी देश के रीति-रिवाज पर कटाक्ष करना होता है । 6. मेलो-ड्रेमेटिक अेकांकी - किसी के दु:ख में दु:खी होने के पहले जब हम हँसते है तब घटना Melodramatic होजाती है । 7. अैसे अेकांकी जिन का अंत आनंदमय है परन्तु जिनका विषय मजदूरों आदि का जीवन है । 8. अैतिहासिक अेकांकी 9. व्यंग्यात्मक अेकांकी 10. स्वांग के ढंग के अेकांकी 11. Cockney अेकांकी मजदूरों की विकृत भाषा में रचित अेकांकी और 12. सामाजिक अेकांकी ।

उपर्युक्त वर्गीकरण केवल विविधता पर प्रकाश डालता है । यों तो वर्गीकरण की इस सूची की संख्या बढ़ती ही जाती है । कारण विभिन्न प्रकार के विषयों का विभिन्न शैलियों में प्रस्तुतीकरण अेकांकी विधा में होता है । विकास पथ पर क्षिप्रता से बढनेवाली विधा को सीमाओं के अंतर्गत करना कठिन ही नहीं, असाध्य भी है ।

इस तरह हम देखते हैं कि संस्कृत नाट्य साहित्य में अेक अंक वाले नाटकों के शिल्प-विन्यास का काफी विकास हुआ था और वह शिल्प आधुनिक पाश्चात्य अेकांकी शिल्प से सर्वथा भिन्न है । अंग्रेजी साहित्य में अेकांकी का उद्गम पद्य-प्रहसन के रूप में हुआ था । और रिफॉर्मरी आन्दोलन के साथ उसकी कला का विकास रंगमंच के माध्यम से हुआ है । आधुनिक अेकांकी आधुनिक मशीन-युग के दुतगामी अवकाशहीन जीवन की उपज है । अपने व्यस्त जीवन में से मनोरंजन केलिअे आज का मनुष्य अधिक समय दे नहीं पाता । अतः अैसे छोटी-परिधि वाले साहित्यिक माध्यमों का आविर्भाव हुआ जो कला की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण हो । अंग्रेजी में अेकांकी के जन्म के मूल में ये कारण भी काम करते रहे हैं । पर हिन्दी साहित्य में अेकांकी का उद्भव इस से भिन्न परिस्थितियों में हुआ है । आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दु का आगमन हुआ और उस की प्रगति की हर दिशा उज्ज्वल भविष्य की खोज में लग गई है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का यह आदर्श रहा कि हिन्दी में हर अेक साहित्यिक माध्यम का प्रयोग मौलिक ढंग से कर नये साहित्यकारों को उन उन ~~[illegible]~~ दिशाओं में प्रेरणा प्रदान करना है । इसी आदर्श के फलस्वरूप नाटक के क्षेत्र में भी उन का सृजन कार्य प्रारंभ हुआ था । उस समय पारसी थियेटरों में अैसे सुरुचिपूर्ण, भारतीय संस्कृति से सर्वथा भिन्न बेढंगे नाटक खेले जाते थे जिन से जनता में सुरुचि के स्थान पर सस्ती भावनाअें फैल रही थीं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को यह बात बहुत खटकी । उन्होंने अपनी "नाटक" पुस्तक में व्यावसायिक नाटकों की अधोगति पर व्यंग्य करते हुअे लिखा है -- "काशी में पारसी ~~[illegible]~~ नाटकवालों ने नाच-घर में जब शकुन्तला नाटक खेला और उस में धीरोदात्त नायक दुष्यन्त डेमटेवालों की तरह कमर पर हाथ रख कर मटक-मटक कर नाचने और "पतरी कमर बल खाय" यह गाने लगा तो डा. थिबो, बाबू प्रमदादास मित्र प्रभृति विद्वान यह कह कर उठ आये कि अब देखा नहीं जाता । ये लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं ।" इस अधोगति से नाटक साहित्य का उद्धार करने केलिअे और नाट्य-रचना के आदर्श केलिअे भारतेन्दु ने संस्कृत नाट्य परंपरा की ओर दृष्टिपात किया । उन्होंने तत्कालीन सामाजिक विषयों को कथावस्तु के रूप में लिया और संस्कृत नाट्य शिल्प के कुछ तत्वों को ग्रहण कर रंगमंच की आवश्यकताओं के अनुरूप नाटकों की रचना की है । पूर्ण रूपसे संस्कृत नाट्य शिल्प का ग्रहण तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक सिद्ध नहीं होता । संस्कृत अेकांकियों

का विवरण देते समय हम ने उन के ऐसे अेकांकियों की चर्चा की है जिनका प्रणयन संस्कृत रूपक या उप-रूपक के लक्षणों के अनुसरण पर हुआ है । उन से रचित "विषस्य विषमौषधम" - भाण, धनंजय-विजय - व्यायोग अंधेर नगरी तथा वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति प्रहसन भारत दुर्दशा - नाट्य रासक है । भारतेन्दु मण्डली के अन्य लेखकों के सम्मुख भारतेन्दु के आदर्श ही थे । पं. बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, पं. प्रतापनारायण मिश्र, लाला श्रीनिवासदास, किशोरीलाला गोस्वामी, माधवकृष्ण दास, देवकी नन्दन त्रिपाठी बदरीनाथ चौधरी, प्रेमघन इत्यादि लेखकों ने अेकांकी के क्षेत्र में नवीन प्रयोग किये थे । भारतेन्दु युग में रचित इन रचनाओं पर तीन प्रकार के प्रभावों की छाया दृष्टिगोचर होती है । वे हैं-संस्कृत, बंगला, तथा अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव । लेकिन इन तीनों प्रभावों में से संस्कृत नाट्य साहित्य का प्रभाव अन्य दो प्रभावों की अपेक्षा अधिक पड़ा है । दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि संस्कृत नाट्य साहित्य हिन्दी नाट्य साहित्य की मूल प्रेरिका का काम करता रहा है । केवल भारतेन्दु के ही प्रयोगों में ही नहीं अपितु उन के समकालीन अन्य नाटककारों की रचनाओं में भी संस्कृत शैली का अनुसरण मिलता है । इस युग में रचित नाटकों की शैली-संबंधी विशेषताओं पर विचार करने पर अवगत होता है कि संस्कृत शैली का प्रभाव कितना अधिक रहा । इन नाटक-कारों ने "अंक" तथा दृश्य" के प्रयोग के किसी विशेष नियम का पालन नहीं किया । संस्कृत नाट्य शास्त्र में दस रूपकों के अंतर्गत अंक नाम से अेकांकी की कल्पना थी, किन्तु इस अंक में अनेक दृश्यों की व्यवस्था भी थी । अंक किसी बड़े रूपक का किसी विशिष्ट घटना को लिये हुअे अेक विभक्तांश ही कहा जा सकता है जैसे वसंत के दो मास चैत्र और वैशाख में से चैत्र को अलग कर रख दिया हो । अंक और दृश्य शब्दों का प्रयोग अपने इच्छानुसार इन नाटककारों ने किया है । कहीं दृश्य के स्थान पर अंक का प्रयोग मिलता है तो कहीं अंक के स्थान पर दृश्य का । इन नाटकों में नान्दी, मंगलाचरण, नटी सूत्रधार का वार्तालाप, विदूषक गायन भरत-वाक्य आदि के प्रयोग मिलते हैं । अैसे नाटक भी उपलब्ध होते हैं जिन को विषय विस्तार की दृष्टि से अेकांकी के अंतर्गत रख सकते हैं । डा. सोमनाथ गुप्त ने इन नाटकों पर विचार करते हुअे अपनी पुस्तक "हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास" में लिखा है -

- "कलात्मक दृष्टि से ये प्रायः सभी अेकांकी नाटक जैसे हैं, जिन में समस्या केकिसी अेक पहलू पर विचार किया गया है और संवादों में पात्रों द्वारा लेखक के विचारों को रख दिया गया है । उन्हें नाटकीय बनाने का कोई गंभीर प्रयास नहीं है । नाटक को लेखकों ने विचार माध्यम तो स्वीकार कर लिया पर उस के सांगोपांग विकास और कलात्मक उन्नति की ओर ध्यान नहीं दिया ।" "दृश्य" शब्द का निश्चित प्रयोग इस युग में नहीं किया गया है । प्रायः गर्भांक का प्रयोग दृश्य के स्थान परकिया जाता था । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "सतीप्रताप" में गर्भांक का प्रयोग किया है । केवल दृश्य शब्द का प्रयोग भी कुछ नाटकों में मिलता है । डा॰ सत्येन्द्र के अनुसार यह मत सामान्य ही है कि संभवतः सब से पहले अंक शब्द दृश्य का पर्याय मान लिया गया होगा । संस्कृत नाटकों में अंक का विधान तो है पर दृश्य का नहीं । अतः नयी प्रणाली के इन नाटकों में अंक को वह स्थान दिया गया है जो दृश्य का है । संस्कृत नाट्य साहित्य से प्रभावित होने के कारण अेकांकियों का प्रणयन रसों के आधार पर किया गया है । इन नाटकों का कथानक लौकिक तथा प्रख्यात हुआ करता था । भारती-वृत्ति की प्रधानता के कारण वीर और करुण रस की अभिव्यक्ति बड़ी कुशलता के साथ की जाती थी । इन में विलाप और वाग्युद्ध दोनों की ही संभावना रहती थी ।[1] विशेष रुप से हास्य रस प्रधान प्रहसनों की रचना अधिक हुई और प्रहसन विशेष लोक-प्रिय हुअे हैं ।

प्रहसन ही अैसा माध्यम है जिस के द्वारा लेखक तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक कुरीतियों पर कठोर प्रहार कर सुधार की भावना की ओर जनता का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं । अतः प्रहसनों की रचना कर इन लेखकों ने अेक ओर जनता का मनोरंजन किया तथा दूसरी ओर उस की सतप्रवृत्तियों को विकसित किया है । कलात्मक प्रौढ़ता के अभाव के कारण इन प्रहसनों का उद्देश्य अधिक स्पष्ट हो गया है । ~~कलात्मकप्रौढ़ताकेअभाव~~ इस युग के अेकांकी नाटकों का प्रारंभ संस्कृत नाटकों की भाँति नान्दी या मंगलाचरण से होता है । नाटक के मुख्य उद्देश्य का निर्देश प्रारंभिक कथोपकथनों में ही किया जाता है ।

"1" डा॰ रामकुमार वर्मा - रजतरश्मि - पृ॰ 6

प्रायः नीति संबंधी उपदेश देने के उद्देश्य से ये नाटक रचे जाते थे । अतः नाटक के प्रारम्भ में ही मूल समस्या का प्रकटीकरण वाक्य, दोहे या उद्धरण के द्वारा किया गया है । प्रतापनारायण मिश्र रचित "कलिकौतुक रुपक" के प्रारम्भ में लिखा गया है — " कलिकौतुक रुपक जिस में बड़े-बड़े लोगों की बड़ी बड़ी लीलायें विशेषता, नगर निवासियों के चरित्र दिखलाये गये है ।" भारतेन्दु रचित "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" के नान्दी के प्रथम दोहे में प्रहसन का विषय स्पष्ट कर दिया गया है ।

नान्दी: "बहु बकरा बलिहित करे, जाके बिना प्रमान ।
सो हरि की माया करें, सब जग को कल्याण ।।

इसी भाँति इस युग के अेकांकियों की समाप्ति संस्कृत नाट्य शैली के अनुकरण पर भारत वाक्य से की गई है । भारतेन्दु बाबू की "भारत जननी" का अंतिम अंश इस प्रकार है जिस में मूल समस्या स्पष्ट की गई है — "तजि द्वेष ईर्ष्या द्रोह निन्दा देश उन्नति सब चहैं ।
अभिलाष यह जिस पूर्ववत् धन धान्य सोहि सब ही कहैं ।।

इसी प्रकार प्रतापनारायण मिश्र के "कलिकौतुक रुपक" के अन्त में भरत वाक्य का विधान है ।

शिवनाथः- तजि दुख प्रद दुरव्यसन पुरुष बनिता अरु बालक ।
तन क्रम वचन स्त्री होहिं सुबस आज्ञा प्रतिपालक ।
निज गौरव पहिचान सजग रवि कसौटी जन सौं ।
करहिं सबै सब काल देश हित तन मन धन सौं ।
भारत में चहुँ दिसि प्रेममय धवल धुजा पहरत रहैं ।
कवि प्रताप हरि मिश्र की सुहृद हृदय आदर लहै ।

प्रेमनाथः- अेवमस्तु, अेवमस्तु परमेश्वर आप के अैसे उत्तम मनोरथ पूर्ण करें ।

प्रारंभकालीन अेकांकियों में शिल्पगत प्रौढ़ता के दर्शन की अपेक्षा करना भूल ही होगी । इस युग की रचनाओं में वस्तु संकलन की ओर ध्यान किया गया । लेकिन अन्य दो समय और स्थान का निर्वाह नहीं हुआ है । अतः स्वाभाविकता के दर्शन इन में नहीं होते । भारतेन्दु युग के अेकांकी शिल्प की विशेषताओं पर विचार करते हुअे डा. रामचरण महेन्द्र ने लिखा है कि "इस काल के अेकांकियों पर पारसी थियेटरों का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई पड़ता है । इन में स्थान स्थान पर गायन की भरमार है । पात्र प्रायः दोहों, कवित्तों, तोरहों तथा

नाना प्रकार के रागों का प्रयोग करते हैं । कथोपकथन में कहीं अेक पात्र कविता की अेक पंक्ति बोलता है तो दूसरा उसी के स्वर तथा लय का ध्यान रखता हुआ कविता में उत्तर देता है ।" लेकिन संगीत तथा कवित्व की भरमार का कारण केवल पारसी थियेटर का प्रभाव नहीं है । भारतेन्दु ने संस्कृत नाट्य शास्त्र की नींव पर हिन्दी नाट्य साहित्य का प्रसाद निर्मित किया है । संस्कृत नाट्य कला के अनुकरण पर रचे जाने के कारण इस युग के नाटकों में काव्यात्मकता अधिक दृष्टि-गोचर होती है । इन नाटकों में नाटकीय संकेतों जैसे स्वागत, आप ही आप, प्रकाश आदि का प्रयोग किया गया है । लेखकों ने रंगमंच की सूचनाओं को प्रस्तुत किया है पर आज के अेकांकियों की रंग सूचनाओं की भाँति वे न तो विस्तृत हैं न अेकांकियों के प्रास्तुतीकरण के लिअे पर्याप्त है । भारतेन्दु युग में अेकांकी रचना का प्रारम्भ हुआ है अतः उस की कला अल्प विकसित है । भारतेन्दु युग के पश्चात् अेकांकी कला का विकास तो हुआ किन्तु जितना होना चाहिअे था उतना नहीं हो पाया । द्विवेदी-युग में अेकांकी की प्रगति मन्द गति से हुई है । इस के निम्नलिखित कारण दिखाई पड़ते हैं । नाटकों का प्रस्तुतीकरण रंगमंच पर नहीं होता था । क्यों कि हिन्दी में रंगमंच का अभाव था और अभिनय कला का प्रचार कम था । सुशिक्षित समाज का प्रोत्साहन अभिनय कला को नहीं मिला । लेकिन अेकांकी की धारा अेकदम लुप्त तो नहीं हुई । उसकी गति अवश्य धीमी पड़ गई है । इस युग में अेकांकी रचना में नवीनता दृष्टिगोचर होती है जो पाश्चात्य नाट्य कला के अनुकरण के कारण हिन्दी नाट्य कला में प्रविष्ट हुई है । भारतेन्दु युग में संस्कृत नाट्य परंपरा के अनुकरण पर अेकांकी रचे गये थे , तो इस युग में पाश्चात्य नाट्य परंपरा के अनुकरण पर नये ढंग के नाटक लिखे जाने लगे । इस युग के प्रमुख नाटककारों में पं. राधेश्याम वाचक, पं. तुलसीदत्त शैदा, मंगलप्रसाद विश्वकर्मा, जयदेव शर्मा, सियाराम-शरण गुप्त, बदरीनाथ भट्ट, जी.पी. श्रीवास्तव, पं. बृजनारायण पाण्डेय, बेचनशर्मा उग्र, सुदर्शन, जयशंकर प्रसाद आदि उल्लेखनीय है । वास्तव में हिन्दी अेकांकी का दूसरा युग प्रसाद रचित "अेक्यूँट" अेकांकी से प्रारंभ होता है । अेकांकी के इतिहास में इस अेकांकी नाटक का महत्व-पूर्ण स्थान है । कुछ आलोचकों के अनुसार इस अेकांकी से हिन्दी अेकांकी युग का प्रारंभ हुआ है । उन आलोचकों में प्रकाशचन्द्र गुप्त, सत्येन्द्र शरत,

प्रो. सद्गुरुशरण अवस्थी, डा. नगेन्द्र आदि उल्लेखनीय है । डा. नगेन्द्र का कथन है कि सचमुच हिन्दी अेकांकी का प्रारंभ प्रसाद के अेक घूंट से हुआ है । प्रसाद पर संस्कृत का प्रभाव है । इसलिअे वे हिन्दी अेकांकी के जन्मदाता नहीं कहे जा सकते, यह बात मान्य नहीं । अेकांकी की टेकनीक का अेक घूंट में में पूरा निर्वाह है ।(1)

इस तरह इस वर्ग के आलोचक हिन्दी अेकांकी का प्रादुर्भाव अेक घूंट से मानते हैं । दूसरे वर्ग के आलोचक प्रसाद को इसलिअे आधुनिक अेकांकी के जन्म-दाता नहीं मानते कि प्रसाद जी पर संस्कृत की परिपाटि का अधिक प्रभाव है । प्रो. अमरनाथ गुप्त का कथन है कि "प्रसाद जी के अेकांकी संस्कृत की परिपाटी से ही अधिक प्रभावित रहे । प्रसाद जी पथ-प्रदर्शक के रुप में हिन्दी भाषा-भाषियों के सम्मुख उपस्थित न हो सके । हिन्दी साहित्य के पश्चिम के से अेकांकी के जन्मदाता प्रसाद जी नहीं है ।(2) दोनों वर्गों के आलोचकों ने अपने अपने दृष्टिकोण के आधार पर उपर्युक्त धारणाअें बनाई हैं वास्तव में प्रसाद जी का "अेक घूंट" अेक अैसी कडी है जो अेकांकी साहित्य की प्रारंभावस्था और विकसित अवस्था को मिला देती है । जैसे शैशव और यौवन के बीच किशोर अवस्था की कडी हो । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों से हिन्दी में अेकांकी का प्रादुर्भाव हुआ है । प्रसाद का "अेक घूंट" अेकांकी की किशोर अवस्था का द्योतक है । क्यों कि वह नाटक भी आधुनिक पाश्चात्य अेकांकी कला की कसौटी पर पूर्ण रुप से खरा नहीं उतरता । द्विवेदी-युग के पश्चात् अेकांकी ने अपनी यौवनावस्था में पदार्पण किया । द्विवेदी युगीन अेकांकी शिल्प संबंधी विशेषताओं का उल्लेख करना आवश्यक है । भारतेन्दु युग की अपेक्षा शिल्प का विकास इस युग में हुआ है । संस्कृत नाट्य परंपरा का पूर्ण रुप से परित्याग तो इस युग के नाटकारों ने नहीं किया लेकिन नान्दी प्रस्तावना, भरत-वाक्य आदि परिपाटियाँ समाप्त हो गई । इन में कार्य संकलन पर ध्यान तो दिया गया पर स्थल और समय के संकलनों का निर्वाह नहीं हुआ है । दृश्यों की संख्या अधिक ही रही । लेकिन कथा के विकास में कौतूहल की प्रधानता पर

---

(1) आधुनिक हिन्दी नाटक - डा. नगेन्द्र पृ. 131

(2) अेकांकी नाटक - प्रो. अमरनाथ गुप्त - पृ. 41-42

विशेष बल दिया जाने लगा और चरमसीमा की ओर कथा-वस्तु को अग्रसर करने का प्रयत्न रहा था ।

पाश्चात्य नाट्य परंपरा के अनुकरण पर रचे जाने के कारण इन नाटकों में संघर्ष अथवा द्वन्द्व को भी स्थान मिला था और संघर्ष के अन्तिम परिणाम तक पहुँचा कर फल प्राप्ति की व्यंजना की गई है । यद्यपि चरित्र-चित्रण पर भी लेखकों का ध्यान रहा था लेकिन चरित्र की आन्तरिक गहराइयों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न नहीं किया गया केवल ऊपरी दृष्टि से चरित्र का निर्माण हुआ है । प्रथम युग की ही भाँति इस युग के अेकांकियों में भी स्वगत, प्रकट आदि का प्रयोग हुआ । संगीत का प्रयोग भी उसी तरह बना रहा । सस्ते गानों का प्रयोग इस युग के अेकांकियों में किया गया है । नाटककार अपने नाटक में अैसे प्रसंगों की कल्पना जान-बूझकर करते थे जिस में गीतों केलिअे स्थान हो । निम्न-कोटि के मनोरंजन देने के उद्देश्य से अैसे सस्ते गानों का आयोजन इन नाटकों में किया जाता था । मंगलप्रसाद विश्वकर्मा का एकांकी "शेर सिंह" रामसिंह वर्मा के प्रहसन "रेशमी रुमाल" और "किस-मिस" आदि अेकांकी उदाहरण केरूप में लिये जा सकते हैं । स्वगत कथनों तथा सस्ते गानों के प्रयोग से इन नाटकों में अस्वाभाविकता आ गई है । हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी आदि का सम्मिश्रित रूप इन नाटकों में मिलता है । रंगमंचीय सूचनाअें संक्षिप्त और अपूर्ण थीं जिन से अभिनय के लिअे कोई सहायता नहीं मिलती । इन शिल्पगत विशेषताओं से यह विदित होता है कि द्विवेदी युग का अेकांकी साहित्य यद्यपि पाश्चात्य नाट्य कला का प्रभाव ग्रहण कर विकास पथ पर अग्रसर हो रहा था, तथापि इस युग में पूर्ण रूप से प्राचीन परंपराओं का परित्याग नहीं किया । इस युग में अैसे सफल अेकांकीकार हुअे हैं जिन की प्रतिभा से सृजित अेकांकियों ने आगे की पूर्ण विकसित परंपरा के मार्ग को साफ किया है । विशेष रूप से इस युग में रचित प्रहसनों ने आगे चलकर सामाजिक नाटकों का पथ प्रशस्त किया है । बदरीनाथ भट्ट के "पुराने हकीम साहब का नया नौकर", "आयुर्वेद केसरी" "ठाकुर दानीसिंह, रेगड़ समाचार के अेडीटर की धूल दच्छना, धोंधा बसंत विद्यार्थी, "चुंगी की उम्मेदवारी" या मेम्बरी की धूप, जी.पी. श्रीवास्तव के गेड़बड़झाला, घुमदार आदमी, कुर्सीमन, हजामत, मूलचूक,

चोर के घर छिछोर, लक्कड़ बग्घा और भिरिचानन्द प्रहसन उल्लेखनीय हैं । सुदर्शन रचित "राजपूत की हार" और "छाया" अेकांकी भी अपनी सहज स्वाभाविक शैली के लिअे उल्लेखनीय हैं जिनकी शैली आगे चलकर विकसित हुई है । जयशंकर प्रसाद के "अेक घूंट" का उल्लेख पहले ही किया गया है । उन के अन्य अेकांकी सज्जन, करुणालय, (गीतिअेकांकी) और प्रायश्चित्त आधुनिक अेकांकी शिल्प की प्रयोगात्मक रचनाअें हैं । "अेक घूंट" नवीन शिल्प की कड़ी के रूप में अपना अलग अैतिहासिक महत्व रखता है ।

हिन्दी अेकांकी का तीसरा युग सन् 1938 से माना जा सकता है । सन् 1938 में हँस का अेकांकी विशेषांक निकला था जिस ने साहित्यकारों का ध्यान अेकांकियों के शिल्प संबंधी विवेचन की ओर आकृष्ट किया है । अेकांकी विधा के संबंध में कई आपत्तियाँ कुछ आलोचकों के द्वारा उठाई गई । दूसरे आलोचकों ने उन आपत्तियों का खण्डन भी किया है । दूसरे शब्दों में अेक ओर अेकांकी विधा का विरोध हुआ तो दूसरी ओर उस का अधिक समर्थन भी हुआ हैं । प्रथम वर्ग के आलोचकों का मत इस प्रकार है - अेकांकी नाटक की कोई निश्चित और निजी टेक्नीक न तो अभी बन पाई है और न बन सकती है । इस में पात्रों के व्यक्तित्व का चित्रण अथवा विकास भी नहीं किया जा सकता । अेकांकी /// का ध्येय सिर्फ मनोरंजक अथवा अर्थपूर्ण वार्त्तालाप है । अेकांकी लिखना बहुत आसान है । यह कहानी का रंगमंच पर खेला जानेवाला संस्करण मात्र है । इस में क्लाईमेक्स का होना आवश्यक नहीं । अतः अेकांकी का साहित्य में कोई स्थान नहीं है ।:: दूसरे वर्ग के अंतर्गत वे आलोचक आते हैं जो जैनेन्द्र के समान अेकांकी नाटक को साहित्य के बहुत-से रूपों में से अेक रूप मानते हैं । उन का मत इस प्रकार है -" अेकांकी नाटक कृत्रिम है क्योंकि उस की रचना काल्पनिक स्टेज को ध्यान में रखकर की जाती है । उन में जो कोष्टक लगते हैं वे तमाशा तक बन जाते हैं । जब हिन्दी में अपना रंगमंच ही नहीं, तब निर्देश की क्या आवश्यकता है ? अेकांकी नाटक यदि वह छपता है, तो सुपाठ्य होना चाहिअे ।" ::: अेकांकी के संबंध में उत्पन्न उपर्युक्त विरोध का खण्डन कर समर्थन करनेवाले लोग तीसरे वर्ग के अंतर्गत आते हैं जिन में उपेन्द्रनाथ अश्क प्रमुख हैं । कुछ

:: हँस अेकांकी नाटक अंक - पृ. 801-802

::: हँस अेकांकी नाटक अंक पृ. 663 अश्क जी के नाम जैनेन्द्र का पत्र

ऐसे भी हैं जिन में हँस के संपादक श्रीपतिराय जी अग्रगण्य हैं जो अेकांकी के विरुद्ध आरोपों को कुछ अंशों में ठीक मानते हैं पर उस की उपयोगिता और उपादेयता में सन्देह करना अनुचित समझते हैं ।

अेकांकी शिल्प के विकास काल में इस तरह के विरोधों का उठना स्वाभाविक है । अेकांकी के विरुद्ध उत्पन्न आरोप उस के शिल्प की अनिश्चितता को समाप्त करने में सहायक हुअे हैं । हिन्दी के अेकांकीकारों तथा आलोचकों ने उस केशिल्प पर पर्याप्त विचार और प्रयोग किये हैं । इस युग में पाश्चात्य नाट्य सिद्धान्तों का अध्ययन विशेष रूप से हुआ है । उस की प्रेरणा प्राप्त कर हिन्दी अेकांकीकारों ने अपने अेकांकी शिल्प को निखारा हिन्दी अेकांकी की अपनी मान्यताअें तथा सीमाअें निश्चित हो गई हैं । द्विवेदी युग के शिल्प संबंधी अभावों की पूर्ति इस युग में की गई है । अेकांकी के सभी तत्वों पर अेकांकीकारों और आलोचकों के द्वारा प्रकाश डाला गया है ।

अेकांकी नाटक कहानी का रंगमंच पर खेला जानेवाला संस्करण मात्र नहीं है । इन दोनों विधाओं में शिल्प संबंधी मौलिक भिन्नता है । कहानी पाठ्य या श्रव्य है लेकिन अेकांकी अभिनेय है, उसका सृजन रंगमंच केलिअे किया जाता है । यद्यपि कई अेकांकी पाठ्य भी हो सकते हैं पर उन की सफलता रंगमंच पर अभिनीत होने में ही है । कहानी और अेकांकी के कुछ तत्वों का साम्य अवश्य है लेकिन इस के क्षेत्र पृथक पृथक हैं । इसी प्रकार केवल संभाषण अेकांकी के रूप धारण नहीं करता । उपेन्द्र नाथ अश्क का कथन है कि - केवल संभाषण ही अेक सुन्दर खेला जानेवाला अेकांकी नहीं बन सकता । उस केलिअे अनन्य मनस्कता (कान्सेन्ट्रेशन) उद्देश्य प्रसंग, प्रभाव और कार्य व्यापार की इकाई, छोटी छोटी घटनाओं का ध्यान और आधारभूत विचार का प्रतिपादन आवश्यक है । :-: अेकांकी में चरमसीमा का होना भी आवश्यक है । क्यों कि इस में भी बडे नाटक की भाँति अंतिम प्रभाव को व्यंजित किया जाता है । डा. राम कुमारवर्मा जैसे अेकांकीकार चरमसीमा की ओर अधिक ध्यान रखते हैं उन का कथन है कि जीवन की प्रमुख संवेदना को लिअे हुअे अेक ही पात्र या अेक ही परिस्थिति बादलों की भाँति नीचे से उठकर घटनाओं के झोंके में ऊपर

:-: अेकांकी का साहित्य में स्थान - नाटककार अश्क पृ. 442

जाकर चन्द्र और सूर्य को ढक ले और चरमसीमा की विद्युत से आलोकित होकर जीवन के सत्य की बूँदों में बरस पड़े, यही अेकांकीकार का लक्ष्य कौशल है । यह बात तो ठीक है कि हिन्दी में कोई स्वतन्त्र रंगमंच निर्मित नहीं हुआ । लेकिन इस युग में अेकांकी रंगमंच को दृष्टि में रखकर ही रचे गये है । कारण स्कूल, कालेज, विश्व विद्यालयों के थियेटर या रंगमंच में ये नाटक खेले जाने लगे । उन की माँग की पूर्ति अनेक अेकांकीकारों ने की है । अतः संग संकेत अेकांकी कला के आवश्यक तत्व है । केवल नयी शैली के अनुकरण पर नहीं रंगसंकेत दिये नहीं जा रहे हैं । इस युग के अेकांकी में अेक सुनिश्चित लक्ष्य संकलनत्रय का निर्वाह, जीवन के अेक पहलू का चित्रण मितव्ययता तथा संक्षिप्तता के साथ कथावस्तु का विकास चरित्र चित्रण में मनोविज्ञान की प्रमुखता होती है । अेक अंतिम प्रभाव को व्यंजित करने केलिअे पूर्ण तरह से अेकाग्र हो कर अेकांकीकार कथावस्तु का निर्माण करता है । इस तरह आधुनिक अेकांकी शिल्प ही दृष्टि में पूर्ण हो गया है । इस युग की दूसरी विशेषता रेडियो अेकांकी की माँग है । रेडियो अेकांकी के शिल्प के विकास पर भी अेकांकीकारों का ध्यान रहा। केवल श्राव्य होने के कारण रेडियो अेकांकी [illegible] का शिल्प रंगमंचीय अेकांकी शिल्प से भिन्न है । विकास के युग में रंगमंचीय अेकांकियों को श्राव्य अेकांकियों के रूप में परिणत करने की सफल चेष्ठा की गई है । कभी आगे चलकर अेकांकीकारों ने केवल रेडियो अेकांकी शिल्प के अनुरूप नाटकों की सृजना की और यह अनुभव किया कि इन दोनों का पृथक पृथक क्षेत्र है । भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग में रचित अेकांकियों की भाषा कृत्रिम और अस्वाभाविक थी । इस युग के अेकांकियों में भाषा सहज स्वाभाविक तथा पात्रानुकूल हो गई है । कथोपकथन पात्रों के चरित्र चित्रण करने में सहायक होते हैं । अतः कथोपकथनों का स्वाभाविक होना अत्यन्त आवश्यक समझा गया । इस के पूर्व अेकांकियों में लंबे अस्वाभाविक कथोपकथन रचे जाते थे । नान्दी, मंगलाचरण, स्वगत कथन, भरत वाक्य, संगीत आदि के कारण कृत्रिमता आती थी । इन सब का लोप आधुनिक अेकांकी में हो गया । रंगमंचीय संकेत विस्तार पूर्वक लिखे जाते हैं । रंगमंच पर अेकांकियों के प्रस्तुतीकरण में ये संकेत अधिक सहायता करते हैं । कुछ अेकांकीकारों में रंगमंच का मान-चित्र भी प्रस्तुत किया है । इस प्रकार

पश्चिम के नाट्य-शिल्प से प्रभाव तथा पूर्ण प्रेरणा पाकर आधुनिक अेकांकी का शिल्प निर्मित हुआ है । नवीन पाश्चात्य शैली के आधार पर अेकांकियों का विकास हुआ है । इस युग के अेकांकीकारों में सर्वश्री डा॰ रामकुमार वर्मा, दया शंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्ददास, भुवनेश्वर प्रसाद, जगदीश चन्द्र माथुर, गणेश प्रसाद द्विवेदी, गिरजा कुमार माथुर, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्द बल्लभ पन्त, भगवती चरण वर्मा आदि उल्लेखनीय हैं । इस के पश्चात् अेकांकी के शिल्प संबंधी नवीन प्रयोग और भी किये गये । विविधता और वैचित्र्यता की ओर नाटककारों की दृष्टि गई । कथानकों का चुनाव उसी दृष्टिकोण से किया जाने लगा । राजनीति, समाज, इतिहास, परिवार, धर्म, आदि सब क्षेत्रों से विषय का ग्रहण कर उन उन विशेष पहलुओं की झाँकी प्रस्तुत की गई है । इन अेकांकीकारों की नयी विशेषता है मनो वैज्ञानिक दृष्टिकोण । मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और फ्राईड के मनो विश्लेषण के सिद्धान्तों का प्रभाव इन पर दृष्टिगोचर होता है । व्यक्ति की मानसिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण इन नाटकों में किया गया है । रेडियो अेकांकियों की उन्नति विशेष रूप से हुई है । खुले रंगमंच के भी प्रयोग किये जाने लगे । गीतिनाट्यों की सृजना हुई है । इस क्षेत्र में सुमित्रानन्दन पन्त, गिरिजा कुमार माथुर प्रमुख हैं । अभिनय की सुविधाओं को ध्यान में रखकर अैसे अेकांकी रचे गये कि जिन में स्त्री पात्र न हो, अथवा कम हों । इस प्रकार अेकांकी साहित्य में विविधता तथा कलात्मक प्रौढ़ अभिव्यक्ति के दर्शन होने लगे ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी में अेकांकी के उद्भव और विकास के मूल में संस्कृत तथा पाश्चात्य दोनों नाट्य कलाओं की प्रेरणा थी । हिन्दी अेकांकी शिल्प अपने उद्भव और विकास के लिअे अंग्रेजी अेकांकी कला का जितना ऋणी है उतना ही संस्कृत के अेक अंकवाले रूपक और उपरूपकों का भी । भारतेन्दु युग में इन दोनों नाट्य कलाओं के सम्मिश्रित रूप से इस विधा का प्रारंभ हुआ । भारतेन्दु युग के अेकांकियों में भले ही आज के अेकांकियों के तत्व न मिले, भले ही उन में मनो-वैज्ञानिक मार्मिक अभिव्यक्ति न की गई हो, लेकिन उन में तत्कालीन जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है । अेकांकी साहित्य की शैशवावस्था में जितनी कलात्मक सामग्री दी जासकती है उतनी सामग्री की उपलब्धि

भारतेन्दु युग में होती है । द्विवेदी युग किशोर अवस्था का था जिस में शैशवावस्था के गुण पूर्ण रूप से लुप्त तो नहीं हुये लेकिन साथ ही साथ आगामी यौवनावस्था के गुण भी दर्शन देने लगे । आधुनिक युग में पाश्चात्य नाट्य कला से प्रभाव ग्रहण करने पर उस का विकास पूर्ण रूप से होने लगा । "आज का अेकांकी कुशल कलाकारों के हाथ में है । अपने समस्त विरोध के बाद भी अेकांकी ने अपना ऊँचा स्थान साहित्य में बना लिया है । इस विवाद के बढ़ाने उस की अलग टेकनीक के अस्तित्व का ज्ञान भी हुआ । और जो अस्पष्टताअें कहीं कहीं लेखकों में अेकांकी के संबन्ध में विद्यमान थीं, वे भी स्पष्ट हो गई । नई गति और नयी आस्था के साथ अेकांकी ने साहित्य क्षेत्र में कदम बढ़ाया और कितने ही टेकनीक कुशल व्यक्तियों ने, जिन्होंने अध्ययन और मनन किया था, अेकांकी को ऊँचे धरातल पर पहुँचाने की चेष्टा की । "[:::] डा.सत्येन्द्र का उपर्युक्त कथन अेकांकी के तीसरे युग अर्थात् विकसित स्थिति पर प्रकाश डालता है ।

::: हिन्दी अेकांकी पृ. 35 - डा. सत्येन्द्र